ग्रामीण पाठकों के लिए

भारत में कृषि

रणजीत सिंह

अनुवाद

राम सरुप अणरवी

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-3164-7

पहला संस्करण : 2000 (शक 1922)

Agriculture (*Hindi*)

रु. 16.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली - 110016 द्वारा प्रकाशित।

अनुक्रम

1

भारत में कृषि विकास

विश्व में कृषि का आरंभ पत्थर युग के समय से हुआ माना जाता है। पत्थरों के हथियारों से जब मनुष्य शिकार करने में कामयाब हो गया तो उसका आत्मविश्वास बढ़ा। अग्नि के ज्ञान से मनुष्य और शक्तिशाली बन गया। इस प्रकार इस बढ़े हुए आत्मविश्वास द्वारा मनुष्य ने गुफाओं में से निकल कर खुले मैदानों में रहना शुरू कर दिया। पानी मनुष्य की आरंभिक जरूरत होने के कारण मनुष्यों की झोंपड़ियां दरियाओं के किनारों पर ही बनी। उस समय तक मनुष्य का भोजन शिकार और जंगलों में से प्राप्त फल और जड़ें आदि ही था। खुले मैदानों में रहते समय भी आदमियों का मुख्य धंधा शिकार करना ही था। आदमी इकट्ठे होकर शिकार करने चले जाते और स्त्रियां पीछे बच्चों की देखभाल करतीं और भोजन बनातीं। सबसे पहले किसी स्त्री ने ही अपनी झोंपड़ी के पास उगे घास के दाने एकत्र किए होंगे। दाने सख्त थे जिनको कच्चे खाना कठिन था। उस समय तक पत्थरों का काफी मात्रा में प्रयोग शुरू हो चुका था। किसी स्त्री ने ही इन दानों को पत्थरों से रगड़ने का स्वप्न लिया होगा। इस प्रकार रगड़े गए दाने मानवी भोजन का अंग बन गए। इस प्रकार जंगली घास के दाने इकट्ठे होने लग गए। इन रगड़े दानों को पानी में घोलकर पीने का रिवाज भी उसी समय पड़ा होगा। अग्नि संबंधी ज्ञान हो ही चुका था। किसी ने इन दानों को भून कर रगड़ा होगा तो वह आसानी से रगड़े गए। संभवत: उस समय से ही लोग 'सत्तू' के रूप में

इन दानों का प्रयोग करते आ रहे हैं। जब धरती पर गिरे हुए दाने दोबारा उग आए तो मनुष्य को इनकी बिजाई करने का विचार आया। सबसे पहले नुकीले पत्थरों से धरती में सुराख बनाकर दाने बोने आरंभ किए गए। यह संसार में कृषि का आरंभ था। धीरे-धीरे इन पौधों की सेवा-संभाल की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। पत्थरों की खुरपियों से गोड़ी करके अन्य नसल के घास को निकाल फैंकने का काम शुरू हुआ। पौधों को पानी देने का विचार भी उस समय ही पैदा हुआ। यह अंदाज लगाया जाता है कि दानों की बिजाई का काम सबसे पहले स्त्रियों ने ही आरंभ किया था। इस प्रकार स्त्री और धरती के मिलाप से कृषि और संस्कृति का मूल आधार बना।

कृषि का आरंभ

यह भी माना जाता है कि संसार में कृषि का आरंभ सर्वप्रथम एशिया में हुआ। मध्य पूर्व एशिया को कृषि का जन्मदाता कहा जाता है। इजराईल, जार्डन, इराक और इरान के कुछ क्षेत्र इसमें आते हैं। इस महाद्वीप में आज भी स्त्रियां कृषि कार्यों में मुख्य भूमिका निभाती हैं। वह पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खेतों में काम करती हैं। इस क्षेत्र में गेहूँ और जौ की जंगली किस्में मिली हैं। यहां से ही पत्थर के कृषि-यन्त्र भी प्राप्त हुए हैं। गेहूँ और जौ एक प्रकार के जंगली घास ही हैं जो खुले मैदानों में उगे हुए हैं। आज की गेहूँ और जौ की सुधरी हुई नसलें विकसित होने में हजारों वर्ष लगे। खाद्य फसलों की खेती का एक कारण यह है कि इनके दानों को लंबे समय तक संभाल कर रखा जा सकता है। कठिन समय में भोजन की जरूरत ने इन फसलों की खेती को और उत्साहित किया। पुरानी बस्तियों में मिले दाने इस सच्चाई की पुष्टि करते हैं। यह पुरानी बस्तियां इराक में कोई दस हजार, जार्डन में नौ हजार तथा इरान में कोई आठ हजार वर्ष पुरानी मिली हैं। इस क्षेत्र की भूमि उपजाऊ है और फसलों की जरूरत पूरी करने योग्य वर्षा हो जाती है। फसलों की उपज के कारण मनुष्य ने एक स्थान पर टिक कर परिवार के रूप में रहना शुरू किया।

मैसोपोटेमिया की सभ्यता को सबसे पुरानी माना जाता है। कृषि का विकास सबसे अधिक यहां पर ही हुआ। सबसे पहले बोई जाने वाले गेहूँ के सिट्टे पतले और लंबे सकीरों वाले होते थे। इस किस्म के दाने भी छिलके वाले थे। पहला गेहूँ केवल सात क्रोमोसोम वाला था, जबकि आज की गेहूँ 21 जोड़े क्रोमोसोम वाली है। भारत में गेहूँ की खेती का 3000 बी. सी. पुराना विवरण मिलता है। यह भी पता चला है कि भारत में गेहूँ की काश्त का आरंभ सबसे पहले पंजाब में ही हुआ। खेती में मनुष्य का दूसरा कदम लकड़ी का प्रयोग था। पत्थर के हथियारों को लकड़ी के दस्ते लगाए गए और किसी दुशाख टहनी को हल के रूप में प्रयोग कर लिया गया। तीखे पत्थरों द्वारा सुराख बनाकर बीज बोने की जगह लकड़ी से सियाड़ निकाल कर जोताई व बोआई आरंभ हुई। इस प्रकार कृषि योग्य भूमि में वृद्धि हुई जिससे अन्न की पैदावार बढ़ी। अब उपज को संभालने की समस्या थी। दानों को संभालने के लिए मिट्टी के बर्तन बनाए गए। इस प्रकार मनुष्य भोजन ढूंढ़ने की स्थिति में से भोजन पैदा करने वाली अवस्था में आ गया। वह रोज़ाना भोजन की तलाश से निश्चिंत हो गया। यह कहना मुश्किल है कि हल का प्रयोग कहां से किया जाना शुरू हुआ परंतु मैसोपोटेमिया में इसके प्रयोग के 3000 बी. सी. समय के संकेत मिले हैं। यहां पर ही बांस की नली हल को बांधे मिलती है। पोर से बोआई का यह पहला अवसर समझा जाता है। भोजन की ओर से बेफ़िक्री से मनुष्य के जीवन में कुछ टिकाव आया। इस अवकाश के समय में विकास की ओर नए कदम उठाने संबंधी सोचने से मानवी विकास की गति में तेज़ी आई जिसके द्वारा खेती में और सुधार हुए।

पशुओं के साथ मित्रता

मनुष्य और पशुओं की मित्रता उस समय से ही आरंभ हो गई थी जब मानव ने जंगलों में से निकल कर खुले मैदानों में घर बना कर रहना शुरू किया। यह माना जाता है कि कुत्ता मनुष्य का सब से पहला साथी बना।

हो सकता है कि मनुष्य की ओर से फेंकी हड्डियां खाने आया हो । धीरे धीरे कुत्ता मनुष्य के घरों के पास ही रहने लगा । कुत्ता एक स्वामी भक्त जानवर है वह अपने मालिक के हमेशा साथ रहता है । कुत्ता मनुष्य का शिकार में साथ देता और उनके घरों व फसलों की रखवाली करता । जब मनुष्य ने फसलों की खेती शुरू की तब कुछ घास खाने वाले जानवर उसकी फसलों को खाने के लिए आए होंगे । उन में से बैल भी थे । मनुष्य ने उस समय तक हल की खोज कर ली थी । किसी मनुष्य को बैलों की सहायता से हल खींचने का विचार आया होगा । इस प्रकार बैलों को काबू में लाकर उनसे हल खींचने का काम लेना शुरू किया गया । सामान को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए किसी साधन की जरूरत थी । मनुष्य ने गाड़ी बनाई । उस समय तक पहिए संबंधी मनुष्य को ज्ञान नहीं था । इसलिए यह गाड़ियां पहिए के बिना ही थी । बैलों का खेती के काम में प्रयोग करने से खेती का बहुत विस्तार हुआ । खेती में बैलों का प्रयोग कोई 5000 वर्ष पहले शुरू हुआ । यह भी माना जाता है कि यह प्रयोग सबसे पहले मध्य पूर्व एशिया में ही हुआ । खेती कार्यों के लिए उपयोग में लाया जाने वाला दूसरा जानवर गधा था । इसका उपयोग नील नदी की वादी में अफ्रीका में शुरू हुआ । आज भी अरब देशों में खेती का काम गधे ही करते हैं । जहां वर्षा अधिक होती थी, गर्मतर उमस जैसा मौसम था और पानी के छम्ब थे वहां पर खेती में सांड़ द्वारा काम शुरू हुआ । बकरी और भेड़ दो और जानवर थे जिनकी पालना करना मनुष्य ने शुरू किया । इनकी पालना दूध, मांस और ऊन के लिए की जाती थी । अफगानिस्तान और रूस के कुछ भागों को इनका घर माना जाता था । सिंध से मैसोपोटेमिया तक यह जानवर आदमी के पक्के साथी बन गए ।

घोड़ा और ऊंट दो और महत्वपूर्ण जानवर हैं जिन्होंने खेती के कामों में विशेष भूमिका निभाई है। यूरोप और एशिया में सबसे पहले तुर्किस्तान में घोड़े को पालतू बनाया गया । यूरोप में खेती का काम घोड़े

ही करते हैं। इनका प्रयोग सवारी के लिए भी शुरू हुआ जिससे आवाजाही में तेजी आई। जब पहिया की खोज की गई तो पहिए वाली गाड़ियां भी घोड़े खींचने लग गए। भारत में घोड़ा आर्य लोगों के साथ ही आया। इससे पहले भारत में हाथी को पालतू बनाया गया था। ऊंट का प्रयोग रेतीले क्षेत्र में किया जाना लगा। अरबों ने सबसे पहले ऊंटों को पालना शुरू किया। ऊंट को पालतू बनाने से व्यापार में वृद्धि हुई, क्योंकि ऊंट कई दिन भोजन के बिना रह सकता है। सूअर एक और जानवर है जिसको मनुष्य ने पालना शुरू किया। यह अनुमान लगाया जाता है कि भारत और तुर्किस्तान में सबसे पहले सूअर को पालना शुरू किया। यह भी माना जाता है कि बिल्ली को भी किसानों ने ही पालना शुरू किया है। संभव है कि यह पालना अन्न को चूहों से बचाने के लिए की गई होगी। हड़प्पा की खुदाई करते समय बिल्ली के होने के संकेत मिले हैं। वहां पर दानों के बड़े भण्डार होने का भी अनुमान लगाया गया है।

भारत में खेती

भारत और मैसोपोटेमिया के परस्पर पुराने संबंध माने गए हैं। इसी कारण मैसोपोटेमिया का भारत की खेती पर काफी प्रभाव है। भारत में हल का प्रयोग 2300 बी. सी. में शुरू हुआ माना जाता है। इस संबंधी सभी संकेत हड़प्पा सभ्यता के समय ही मिले हैं। भारत में पहिए वाली गाड़ियां भी उस समय ही शुरू हुई। उस समय के लोग गेहूँ, जौ और चने की खेती करते थे। दो तेल बीज तिल्हन और सरसों की खेती भी उस समय शुरू हुई। भारत को गर्व है कि कपास की खेती सबसे पहले यहां ही शुरू हुई। यह खेती सिन्धु वादी में शुरू हुई। इसलिए ग्रीस भाषा में कपास को सिन्धु कहा जाता है। जहां तक फलों का संबंध है भारत में सबसे पहले खजूर, कंवल, अनार, नींबू, तरबूज़ और नारियल की खेती शुरू हुई मानी जाती है।

आर्यों के भारत में आने से खेती में और भी सुधार हुआ। आर्य

अपने साथ घोड़े लेकर आए थे और वह छातों का प्रयोग करने की जानकारी भी रखते थे। उन्होंने ही गड्डे और सिंचाई का प्रयोग किया। भारत में खेती कामों के लिए बैलों का ही प्रयोग किया। दूध के लिए भैंसे पाली गई। आज भी विश्व की सबसे बढ़िया और सबसे अधिक भैंसें भारत में ही हैं। हाथी को सबसे पहले भारत में ही पालतू बनाया गया माना जाता है। घोड़े, ऊंट और गायों की पालना बाद में शुरू हुई। संपूर्ण भारत में ही खेती का धंधा कोई 2300 बी. सी. पहले शुरू हो चुका था। मनुष्यों ने दरियाओं के किनारें पर अपनी बस्तियां बनाकर रहना शुरू कर दिया था। गाड़ियां, घोड़े और ऊंटों की सहायता से अन्न एक जगह से दूसरी जगह पर जाना शुरू हो गया था। इस प्रकार ज्ञान का आदान-प्रदान भी शुरू हो गया।

3000 बी. सी. के आसपास खेती का धंधा लगभग सारे भारत में ही स्थापित हो चुका था। लोगों ने बस्तियां बनाकर रहना शुरू कर दिया था। जहां उत्तरी भारत में गेहूँ और जौ की खेती होती है वहां दक्षिण भारत में रागी, ज्वार, और बाजरे की अन्न फसलों के रूप में होती थी। इन फसलों की काश्त में कोई 2000 बी. सी. के प्रमाण मिले हैं। यह फसलें कम समय की सिंचाई सुविधाओं के बिना भी हो जाती हैं। इसी तरह दालों में कुलत्थी की खेती के संकेत मिले हैं। कृष्णा और गोदावरी नदियों के किनारों पर उस समय तक काफी आबादी हो चुकी थी। यह भी संकेत मिले हैं कि उस समय तक लोग रेशम संबंधी भी जानकारी रखते थे।

यह अनुमान भी लगाया गया है कि मध्य भारत में मुख्य दालें, मूंग, माह, और मसूर की खेती कोई 1500 बी. सी. में शुरू हो चुकी थी। यह भी माना गया है कि इन दालों की सबसे पहले काश्त भारत में ही शुरू हुई थी। अलसी और अरिण्डी की खेती भी भारत में कोई 200 बी. सी. से पहले ही शुरू हो चुकी थी। फलों संबंधी प्राप्त जानकारी से यह अनुमान लगाया गया है कि बेर और आंवला भारत में पहले से ही मिलते

हैं । केला, अदरक और हलदी का घर पूर्वी भारत को माना जाता है । इसी तरह धान की खेती भी पूर्वी भारत में कोई 3000 बी. सी. में शुरू हो चुकी थी ।

यह माना जाता है कि आर्य लोग कोई 1600 बी. सी. में भारत में आए । वह अपने साथ घोड़े लेकर आए । यह भी माना जाता है कि वह धातुओं का प्रयोग भी जानते थे । रथ की सवारी भी आर्य लोगों ने ही आरंभ की । भारत में संस्कृत भाषा भी आर्य लोग ही लेकर आए । आर्य लोगों ने ही वेदों की भारत में आकर रचना की । ऋग्वेद को सबसे पुरानी पुस्तक माना जाता है । आर्य लोग दूध, घी और मक्खन का अधिक प्रयोग करते हैं । शायद इसी कारण उन्होंने गाय को पवित्र पशु का स्थान देकर उसकी मांस के लिए प्रयोग करने पर पाबंदी लगाई होगी । यह भी पता चला है कि आर्य लोग शराब और भंग का सेवन करते थे । आर्य लोगों ने ही खेती के लिए सिंचाई साधनों को विकसित किया । उन्होंने दरियाओं में से नहरें निकालीं और कुँएं लगवाए । खीरे, घीया, कद्दू का सब्जियों के रूप में प्रयोग का विवरण भी वेदों में मिलता है । आर्य लोग गेहूँ के स्थान पर जौ की खेती करते थे और जौ ही उनका मुख्य भोजन था ।

लोहे की प्राप्ति से खेती विकास पर बहुत प्रभाव पड़ा । हलों में लोहे के फाले लगने से जोताई का काम तेज़ हुआ । होते की दातियां बनने से कटाई का काम आसान हुआ । इस तरह ज्यादा भूमि जोतने से कृषि योग्य बन गई ।

कृषि-विकास के साथ ही साथ सभ्यता का भी विकास हुआ । आवाजाही के साधन विकसित होने से खेती वस्तुओं का व्यापार आरंभ हुआ । इस प्रकार दरियाओं के किनारों पर व्यापारिक-केन्द्र स्थापित होने लगे जो सहज-सहज बड़े नगर बन गए । इस बढ़े कारोबार और दूसरे प्रबंध को ठीक ढंग से चलाने के लिए मुखिये नियत किए गए जो बाद में जाकर राजा बन गए और रियासतें बन गई । चौथी सदी बी. सी. तक

लोगों को सभी कामों संबंधी काफी सूझ हो चुकी थी, और रियासतों ने अपने कायदे कानून बना लिए थे। छठी सदी बी. सी. तक सारे भारत में सोलह (16) बड़ी रियासतें स्थापित हो चुकी थीं। वैदिक धर्म का बोलबाला था और जात-पात पूरी तरह मानी जाने लग गई थी। उस समय ही भारत में बौद्ध धर्म और जैन धर्म अस्तित्व में आए जिन्होंने वैदिक धर्म की सख्त अनुशासित नियमावली से भिन्न, लोगों को सच्चा, शुद्ध और सादा जीवन जीने का संदेश दिया। चतुर्थ सदी बी. सी. में चन्द्रगुप्त मौर्य ने भारत में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित किया और अपनी राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) को बनाया। यह सुख, शान्ति और विकास का समय था। इस घराने के राज्य काल में खेती का काफी विकास हुआ। इस घराने के प्रसिद्ध बादशाह अशोक ने बागवानी और पेड़ लगाने की ओर विशेष ध्यान दिया। दक्षिण भारत में भी वह सुख शान्ति का समय था। इसी कारण वहां भी खेती का काफी विकास हुआ। धान और कपास की खेती में भारत के किसान बहुत निपुण हो गए थे। दक्षिण भारत के बादशाहों ने, जिनमें पाण्डिया, छेड़ा और चोला प्रसिद्ध हैं, कृषि-विकास की ओर विशेष ध्यान दिया। इसी प्रकार उत्तरी भारत के राजाओं में विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन और गुप्त वंशज मुख्य हैं। दसवीं सदी तक भारत में कृषि का पूरा विकास हो चुका था। किसानों ने फसलों की काश्त संबंधी पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था जिस कारण वह अधिक झाड़ प्राप्त करते थे। फसलों की किस्मों में भी सुधार किया गया। सिंचाई साधनों को विकसित करने के यत्न हुए। पौधों को बीमारियों और कीड़ों से बचाने के भी ढंग ढूंढ़ लिए गए। सभी राजाओं को कृषि की महत्ता का ज्ञान था। उन्हें विश्वास था कि उनके राज्य की कामयाबी कृषि-विकास के ऊपर ही निर्भर करती है। खेती उपज के व्यापार की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया। देश के अन्दर खेती पैदावार का व्यापार पूरी तरह होने लग गया था। इस प्रकार दक्षिण के मसाले और कश्मीर के फल सारे देश में पहुंचते थे। इस तरह एक स्थान का ज्ञान

दूसरी जगह पहुंचने से कृषि विकास में और भी तेजी आई । कृषि वस्तुओं का व्यापार पड़ोसी देशों में भी होने लग गया था । कुछ क्षेत्र अपनी विशेष फसलों के लिए प्रसिद्ध थे और दूर-दूर से व्यापारी उनकी खरीद संबंधी वहां पहुंचते थे । अपनी उपज को और अच्छा बनाने के लिए किसानों द्वारा यत्न जारी रहते थे ताकि वह और अधिक आय प्राप्त कर सकें । दक्षिण भारत के नारियल, कपास, और चावल प्रसिद्ध थे जबकि कश्मीर के अंगूरों की सभी तरफ चर्चा थी । शक्कर, अदरक और हल्दी पूर्वी भारत के प्रसिद्ध थे और गेहूँ, जौ के लिए उत्तरी भारत को आगे माना जाता था । दूध और दूध से बने पदार्थ, रेशम और ऊन की पैदावार की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था । हिमालय में मिलने वाले याक (सुरा गाय) की दुमों के चंवर और हिरणों से कस्तूरी प्राप्त की जाती थी । दक्षिण में हाथी दांत का बढ़िया काम किया जाता था । जानवरों की खाल और चमड़े का सामान भारत से दूसरे देशों को भेजा जाता था । पश्चिम भारत इस सामान के लिए प्रसिद्ध था । मुम्बई और मंगलौर के पास मोती निकालने का काम होता था और भारत के मोतियों की बहुत मांग थी । इस प्रकार दसवीं सदी तक भारत में खेती विकास अपने पूरे यौवन पर पहुंच चुका था ।

दसवीं सदी के बाद भारत पर मुसलमानों के हमले होने लगे । देश में कई सदियों तक अविश्वास बना रहा । इस कारण आगामी पांच सौ वर्षों के दौरान खेती में कोई सुधार नहीं हुआ, बल्कि किसानों की दशा खराब ही होती गई । भूमि के मालिक बड़े जागीरदार बन गए जो स्वयं तो हाथों से खेती नहीं करते थे । खेती कार्य गुलाम या मज़दूर करते थे । बादशाहों का किसानों से सीधा संबंध टूट गया और लगान एकत्र करने की जिम्मेदारी जागीरदारों को दे दी गई । इन में अधिकतर किसानों पर जुल्म ही करते थे ।

सोलहवीं सदी में स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ । देश में अकबर का राज्य स्थापित होने से शान्ति का वातावरण बनने लगा । अकबर ने

ज़मीन और खेती संबंधी कई सुधार किए। दक्षिण में विजय नगर रियासत की ओर से भी सिंचाई के कई यत्न किए गए। शेरशाह शूरी ने पांच वर्ष तक भारत पर शासन किया परंतु उसका समय हमेशा याद रहेगा। उसने किसानों की तरक्की की ओर विशेष ध्यान दिया। उनकी हो रही लुट-खसूट को रोका, सड़कें बनवाई और कुँएं खुदवाए। अकबर ने उसकी ओर से शुरू किए सुधारों की ओर विशेष ध्यान दिया। अकबर और उसके बाद में आने वाले मुगल बादशाहों जहांगीर और शाहजहां को बागों का अधिक शौक था। उन्होंने देश में रमणीय स्थान देखकर वहां सुन्दर बाग लगवा दिए। उन बागों में सिर्फ फलदार बूटे ही नहीं थे बल्कि इनकी संरचना ऐसी थी ताकि यह पानी के फुहारों से भरी सुन्दर सैरगाह बन सके। बादशाहों ने बहुत से फलदार और फूलों वाले पौधे एकत्र किए और उनको इन बागों में लगवाया। इन में दिल्ली, आगरा, लाहौर और कश्मीर के बाग विशेष प्रसिद्ध हैं। मुगल राज्य काल में बागवानी ने पश्चिमी यमुना नहर को पुनः चालू किया और लाहौर नहर नई खुदवाई। इस प्रकार नहरों द्वारा सिंचाई का आरंभ हुआ।

सबसे पहले वास्कोडिगामा भारत के बंदरगाह कालीकट में 20 मई 1498 को पहुँचा। वह भारत की तलाश में निकला था। पुर्तगाली भारत के गर्म मसालों के बहुत शौकीन थे। उस संबंध में वह भारत आना चाहते थे। उन्होंने गोआ के ऊपर कब्जा करके भारत में पक्के तौर पर पैर जमा लिए। पुर्तगाली और भी कई अफ्रीकी और अमेरिकी देशों पर कब्जा कर चुके थे। उन्होंने सारी दुनिया में से नए पौधे इकट्ठे किए और बहुत सी नई फसलें भारत में भी लेकर आए। मूंगफली जिसका ब्राजील को घर माना जाता है भारत में पुर्तगालियों द्वारा आई। तम्बाकू, आलू और लाल मिर्च कुछ और मुख्य फसलें हैं जो उनके द्वारा भारत आई। यह भी माना जाता है कि मक्की, टमाटर, शक्करकंदी और रबड़ प्लांट भी इनके द्वारा ही ब्राजील से भारत पहुँचे। आज चाहे यह भारत की मुख्य फसलें बन चुकी हैं और भारतीय भोजन का अटूट अंग हैं परंतु इनकी काश्त

हमारे देश में सोलहवीं सदी में ही शुरू हुई। भारत के कुछ मुख्य फल भी पुर्तगालियों की ओर से ही लाए गए। इनमें चीकू, काजू, अमरूद, पाईन ऐपल (अन्नानास) और शरीफा मुख्य हैं। इसी तरह वे कई सुन्दर फूलों वाले पौधे भी भारत में लाए। वृक्षों की प्योंद द्वारा बढ़ोतरी का तरीका भी उनकी ओर से ही अपनाया गया।

अंग्रेजों का समय

पुर्तगालियों के भारत आने से यूरोप के अन्य देशों में भी यहां आने की इच्छा जाग पड़ी। भारतीय मसाले यूरोपीय लोगों में बहुत प्रचलित थे। तुर्की और मिश्र पर मुसलमानों का कब्जा होने के कारण समुद्री मार्ग उनके अधिकार में आ गया। यहां से गुजरने वाले जहाजों के ऊपर हाकिमों ने टैक्स की दर में बहुत वृद्धि कर दी, जिस कारण भारतीय वस्तुएं बहुत महंगी हो गई। पुर्तगालियों की ओर से नया रास्ता ढूंढ़ कर भारत से व्यापार में किए गए विस्तार को देख अंग्रेजों ने सूरत, ब्रतानिया ने पांडिचेरी और डच्चों ने कोचीन में अपने केन्द्र स्थापित कर लिए। सारे यूरोपीय लोगों में अंग्रेज सबसे अधिक चालाक निकले। उन्होंने 12 मार्च 1612 को उस समय के बादशाह जहांगीर से अपनी कंपनी (ईस्ट इण्डिया कंपनी) को भारत में व्यापार करने की अनुमति प्राप्त कर ली। धीरे-धीरे यह कम्पनी सारे भारत की मालकिन बन कर बैठ गई। अंग्रेजों ने अपना पहला किला मद्रास में 1639 में बनाया और 1687 में बम्बई टापू पर अधिकार कर लिया और 1700 तक कलकत्ते को अपनी राजधानी बनाकर भारत के चौथे हिस्से के ऊपर अपना राज्य करना शुरू कर दिया। अंग्रेजों को भारत में कृषि के विकास के लिए तब विवश होना पड़ा जब 1769 में बंगाल भयानक अकाल की लपेट में आ गया। उस समय भूमि कर ही राजकीय आय का मुख्य साधन होता था। अंग्रेजों ने जागीरदारों पर, भूमि का स्वामित्व उन्हें सौंप कर, टैक्स की दर निश्चित कर दी। इस कारण खेती की ओर कुछ ध्यान दिया गया। परंतु खेती में ज्यादा सुधार न हो सका, क्योंकि जागीरदार स्वयं तो खेती नहीं करते थे

बल्कि खेती तो किसान करते थे जिनको मिल्कियत के अधिकार नहीं दिए गए थे ।

अब तक पूरे यूरोप में औद्योगिक क्रांति आ चुकी थी, जिसका प्रभाव कृषि विकास पर भी पड़ा । इंग्लैंड में स्थापित हो रहे कारखानों के लिए भारत में से कच्चे माल को प्राप्त किया जा सकता था । इस कारण खेती विकास के सुधार की ओर ध्यान दिया जाने लगा जिससे कि इंग्लैंड के कारखानों की जरूरत पूरी की जा सके । इसी क्रम में 310 एकड़ रकबे में कलकत्ता में 1787 में एक भौतिक विज्ञान बाग स्थापित किया गया जहां पर विदेशों से नए पौधे लाकर उगाने के यत्न किए गए । कई नई फसलें भी भारत में आई जिनमें आलू, काफ़ी, रसभरी, तम्बाकू, इलायची आदि मुख्य थीं । अंग्रेजों ने भारत में अपने पैर पसारने जारी रखे और 1818 तक पंजाब तथा सिन्ध के बिना सारा भारत उनके अधिकार में आ गया । सैनिकों के लिए उत्तम घोड़ों की आवश्यकता को मुख्य रखते हुए 1794 में पहला घोड़ा-फार्म पूना में स्थापित किया । बंद पड़ी पश्चिमी यमुना नहर को 1821 में पुनः चालू कर दिया गया । कृषि की ओर ध्यान देने पर भी 1832 में बंगाल में दोबारा भयंकर अकाल पड़ गया, जिससे प्रभावित होकर सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि की ओर ध्यान दिया गया । अन्न के भण्डार रखने के लिए अनाज भण्डार बनाए, पशुओं की नसल सुधार की ओर ध्यान दिया और इंग्लैण्ड से नई नसल के सांड तथा गाएं लाई गई ।

अच्छे पशुओं की संभाल के लिए हरा चारा प्रथम भोजन के तौर पर जरूरत होती है । हरे चारे की नई किस्में विदेशों से लाई गई । जिनमें लूसरन, गिन्नी घास और जवी मुख्य हैं । पशुओं को बीमारियों से बचाने के लिए भी प्रयत्न शुरू हुए। मूरकरोकट नाम का सबसे पहला पशु चिकित्सक (डॉक्टर) 1808 में इंग्लैण्ड से बुलाया गया । इससे अगले वर्ष हरियाणा के नहर हिसार में एक राजकीय पशु फार्म (1809) खोला गया । इस फार्म का क्षेत्रफल 4400 एकड़ था, जिसमें 2500 एकड़ को

पश्चिमी यमुना नहर के पानी से सींचा जाता था।

कृषि विकास में सबसे बड़ा कदम खेती-बागवानी सोसाइटी की स्थापना थी। इस सभा की स्थापना 19 सितंबर 1820 को कलकत्ता में हुई और डॉ. कैरी को इसका प्रथम सेक्रेटरी बनाया गया। इस सोसाइटी की देश के विभिन्न भागों में शाखाएं कायम की गई। सोसाइटी ने देश में कृषि की स्थिति संबंधी सर्वेक्षण कराए ताकि खेती संबंधी जानकारी एकत्र की जा सके। इन सर्वेक्षणों के आधार पर रिपोर्टें तैयार हुई जिनमें खेती संबंधी काफी जानकारी दी गई। इस सोसाइटी की ओर से संसार के भिन्न-भिन्न देशों में बढ़िया बीज, बूटे और यंत्र लाए गए और उनकी स्थानक-स्थिति में जांच की गई। कृषि में सुधार के लिए सोसाइटी की ओर से विशेषज्ञों की कमेटी बनाई गई ताकि अच्छे तरीके से कृषि विकास का कार्य हो सके। इन कमेटियों में सण और पटसन, गन्ना, गेहूँ, तंबाकू, रेशम, पशु, यन्त्र तथा बागवानी संबंधी विषय की मुख्य कमेटियां थीं। इंग्लैण्ड के कारखानों को अच्छी कपास की जरूरत थी। इस कमेटी ने विदेश से कपास के अच्छे बीज मंगवाकर कपास की किस्म और पैदावार में सुधार किया। इसी तरह फसलों के अच्छे बीज विदेशों से मंगवाए तथा उनका निरीक्षण किया। भारत में गन्ने की अच्छी किस्में लाने में सोसाइटी का महत्वपूर्ण योगदान है। गेहूँ की किस्मों में भी सुधार हुआ। स्थानक किस्मों के दाने सख्त होने के कारण उससे मैदा नहीं बन सकता था। सोसाइटी ने 32 नई किस्में विदेशों से मंगवाकर इनमें से स्थानीय स्थिति में अच्छे परिणाम देने वाली किस्मों को प्रचलित किया। तम्बाकू और मक्की की खेती को भारत में उत्साहित किया गया। इंग्लैण्ड से आलू की लाई पहली किस्म 1931 में जांची गई। यह किस्म भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में बड़ी अच्छी सिद्ध हुई। उस समय ही शफतल और गिन्नी घास को भी चारे के लिए प्रचलित किया गया। चाय की खेती के लिए आसाम में यत्न किए गए। इसी प्रकार अदरक और अरारोट को 1832 के आसपास भारत लाया गया। कोको की खेती भी इसी

सोसाइटी की ओर से 1843 में शुरू करवाई गई। कई नए फल और सब्जियों को भारत में लाने का सेहरा भी इसी सोसाइटी के सिर है। फलों में आड़ू, नाशपाती, सेब, अलूचा, लीची और गरोवफ्रूट मुख्य हैं। सब्जियों में गोभी, बन्द गोभी, मटर, पालक और सलाद भारत में इसी सोसाइटी के यत्नों से आए।

भूमि प्रबंध में अंग्रेजों की ओर से एक और महत्वपूर्ण सुधार किया गया जिसको रिउतवाड़ी मालिए का ढंग कहा जाता है। इस ढंग को सबसे पहले मद्रास में सर थामस मुनरो ने लागू किया, जो 1820 में वहां का गवर्नर बना। इस तरीके से किसानों को स्वामित्व के सीधे अधिकार प्रदान कर दिए गए। इसके उपरान्त यह प्रबंध मुम्बई और पंजाब में भी लागू कर दिया गया। इसके प्रबंध अनुसार सरकारी कर्मचारी निश्चित की गई दर पर किसानों से सीधा मालिया एकत्र कर लेते थे इस प्रकार किसानों की जागीरदारों द्वारा की जा रही लूट बंद हो गई परंतु इस प्रबंध से भी किसानों की आर्थिक दशा में ज्यादा सुधार न हो सका। क्योंकि मालिए की दर बहुत ऊंची थी।

ऊटी कमाण्ड में एक भौतिक विज्ञान का बाग 1848 में बनना शुरू हुआ और 1867 तक इसकी पूरी रूप-रेखा तैयार हो गई। यह बाग 51 एकड़ में है और समुद्र तट से 7500 फुट ऊंचा है। यह अपनी किस्म का अनुपम ही बाग है। इस बाग के कारण उस क्षेत्र की खेती में काफी सुधार हुआ है। इस बाग के कारण ही नीलगिरी की पहाड़ियों में आलू और अन्य सब्जियों की काश्त शूरू हुई जिनमें बंद गोभी, फुल गोभी, गाजर, चुकन्दर, मूली, शलगम और गांठगोभी मुख्य थीं। इसी बाग के कारण कई नए फलों के बगीचे इस इलाके में स्थापित हुए। इन में मुख्य नाशपाती, शहतूत और आलूचा थे। इस बाग में ही पहली बार सेब, लीची, चकोतरा, आवोकाडो और रसभरी सफलता पूर्वक उगाए गए। चिलगोजा और सफैदे की काश्त भी इसी बाग के कारण शुरू हुई। अब सफैदे की लकड़ी और तेल इस इलाके में काफी मिलते हैं। इस सफलता

से प्रभावित होकर बंगलौर का लाल बाग 1856 में सरकारी प्रबंध के अधीन ले लिया गया। और इसको फलों का खोज केन्द्र बना दिया गया। इसी बाग में अंगूर, अंजीर, संतरा और मालटा के बूटे लगाए गए। इसी तरह बंगाल में पटसन की खेती को सुधार कर उत्साहित किया गया, क्योंकि इंग्लैण्ड के कारखाने में इसकी मांग बढ़ गई थी। भारत में पहली बार 1793 में पटसन इंग्लैण्ड को भेजी गई थी। पटसन की बनी वस्तुएं भी विदेशों में पसंद की जाने लगी इसलिए पटसन आधारित पहला कारखाना 1855 में स्थापित किया गया परंतु यह संख्या बड़ी तेजी से बढ़ी और 1855 तक 20 कारखाने स्थापित हो गए। चाय के पौधों की होने की जानकारी 1823 में आसाम के क्षेत्र में मिली। पर यह चाय अंग्रेजों को पसंद न आई और चीन से इसके बूटे मंगवाए गए। यह बूटे कामयाब हो गए और 19वीं सदी के अंत तक आसाम और दार्जीलिंग चाय बगान के लिए प्रसिद्ध हो गए।

1850 में सिक्खों की पराजय के उपरान्त पंजाब भी अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। इसके बाद अंग्रेज सारे भारत के मालिक बन गए। पंजाब की पराजित सेना के सदस्यों का पुनर्वास सरकार के सामने प्रस्तुत मुख्य प्रश्न था। अधिकतर सैनिक किसान परिवारों में थे इसलिए इनको खेती में ही लगाने की योजना बनाई गई। सैनिकों को खेती में लगाने के लिए जरूरी था कि सिंचाई सुविधाएं दी जाएं और आवश्यकतानुसार उनको जमीन दी जाती। यह सोचा गया कि पंजाब में नई नहरों का निर्माण किया जाए और बंजर भूमि सिक्ख राज्य के सैनिकों को बांट दी जाए। इस प्रकार पुन: वह अपने अच्छे धन्धे में लग जाएंगे और भविष्य में अंग्रेजों को इनसे कोई भय नहीं रह जाएगा। लार्ड डलहौजी ने देश के विकास के लिए विशेष रूचि दिखाई। पंजाब में अपरबारी नहर 1859 में तैयार की गई। लार्ड डलहौजी को आधुनिक निर्माता के तौर पर भी जाना जाता है। उसने जी. टी. रोड जो कलकत्ता से पेशावर तक 1520 मील लम्बी है और अन्य बहुत सी सड़कें बनवाई।

इस मनोरथ के लिए लोक निर्माण विभाग 1854 में बनाया गया । शिक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया तथा बहुत से स्कूल बनाए गए । प्रत्येक प्रांत में डायरेक्ट शिक्षक लगाए गए । उसके राज्य काल के दौरान 1857 में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालय वजूद में आए पंजाब के कांगड़ा जिले के कस्बे पालमपुर में 1852 में चाय का बाग लगाया गया । भारत में रेलगाड़ी भी लार्ड डलहौजी की कोशिशों से ही आरंभ हुई । सब से पहली रेल मुम्बई से बांद्रा तक 16 अप्रैल 1853 को चलाई गई । हावड़ा से हुगली तक दूसरी गाड़ी 15 अगस्त 1854 को चलाई गई । रेलवे ने देश के विकास में बहुत हिस्सा पाया । टैलीग्राफ और डाक सेवा का आरंभ भी इसी के राज्य काल में हुआ ।

मद्रास में शायद पहला कृषि विभाग 1863 में बनाया गया । कुछ सरकारी फार्म भी स्थापित किए । मद्रास में ही 1863 में एक सिंचाई कम्पनी स्थापित हुई । मद्रास में ही मूंगफली और काली मिर्च के लिए खोज केन्द्र स्थापित 1904 में किए गए ।

पंजाब के कुल्लू शहर में सेबों का पहला बगीचा कैप्टन आर. सी. ली. ने 1870 में लगाया । लार्ड लारंस के समय में सिंचाई की योजनाएं शुरू की गई । इनमें पंजाब की सरहिंद नहर, उत्तर प्रदेश की लोयर गंगा और आगरा नहर, मुम्बई की मुत्था नहर और फरंटियर के इलाके की लोयर सवाथ नहर मुख्य हैं । मुजारों को जमीन के मालिक बनाने के लिए 1868 में मुज़ारा एक्ट बनाया गया । रेशम का पहला कारखाना 1868 में मद्रास प्रांत के कस्बा हैसूर में लगाया गया । कश्मीर में रेशम के कीड़े पालने का कार्य भी उस समय ही आरंभ किया गया । अरल आफ माओ 1869 में भारत का गवर्नर जरनल बना । उसने पहले शुरू किए गए विकास कार्य उसी तरह चालू रखे । एक नया विभाग ज्ञान और आंकड़े स्थापित किया गया ताकि भारत देश के लोगों के लिए भूमि, फसलों, मौसम आदि संबंधी पूरी जानकारी एकत्र कर सके । कृषि के विकास के लिए किसानों को कर्जे दिए जाने भी शुरू किए । यह कर्जे कुँएं खुदवाने,

भूमि सुधार, पशु खरीदने आदि के लिए दिए जाते थे । जुलाई 1871 में माल, खेती और व्यापार नाम का एक और विभाग स्थापित किया गया । कृषि और ग्रामीण विकास के लिए ह्यूम ने बहुत काम किया । उसको भारतीय लोगों से हमदर्दी थी । भारतीय लोगों के भले और कल्याण की रक्षा हेतु उसने 1883 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस बनाई जिस पार्टी ने बाद में महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में देश की आजादी की लड़ाई लड़ी । कृषि विकास के लिए कई प्रांतों ने खेती विभाग स्थापित किए । उत्तर प्रदेश (1874), बंगाल (1881) और पंजाब (1901) राज्यों ने इस ओर पहल की । पंजाब के शहर लायलपुर में 56 एकड़ का एक कृषि फार्म बनाया गया । देश का सबसे पहला वैटर्नरी कालेज पंजाब के शहर लाहौर में 1882 को खोला गया । दूसरा कालेज मुम्बई में 1886 में शुरू हुआ । इस प्रकार कृषि शिक्षा संबंधी एक स्कूल मद्रास में 1886 में स्थापित हुआ । मई 1892 में पहला वैटर्नरी विभाग बनाया गया और 1895 में इम्पीरियल बैकट्रीलोजिकल लेबारट्री मुक्तेश्वर में स्थापित की गई ।

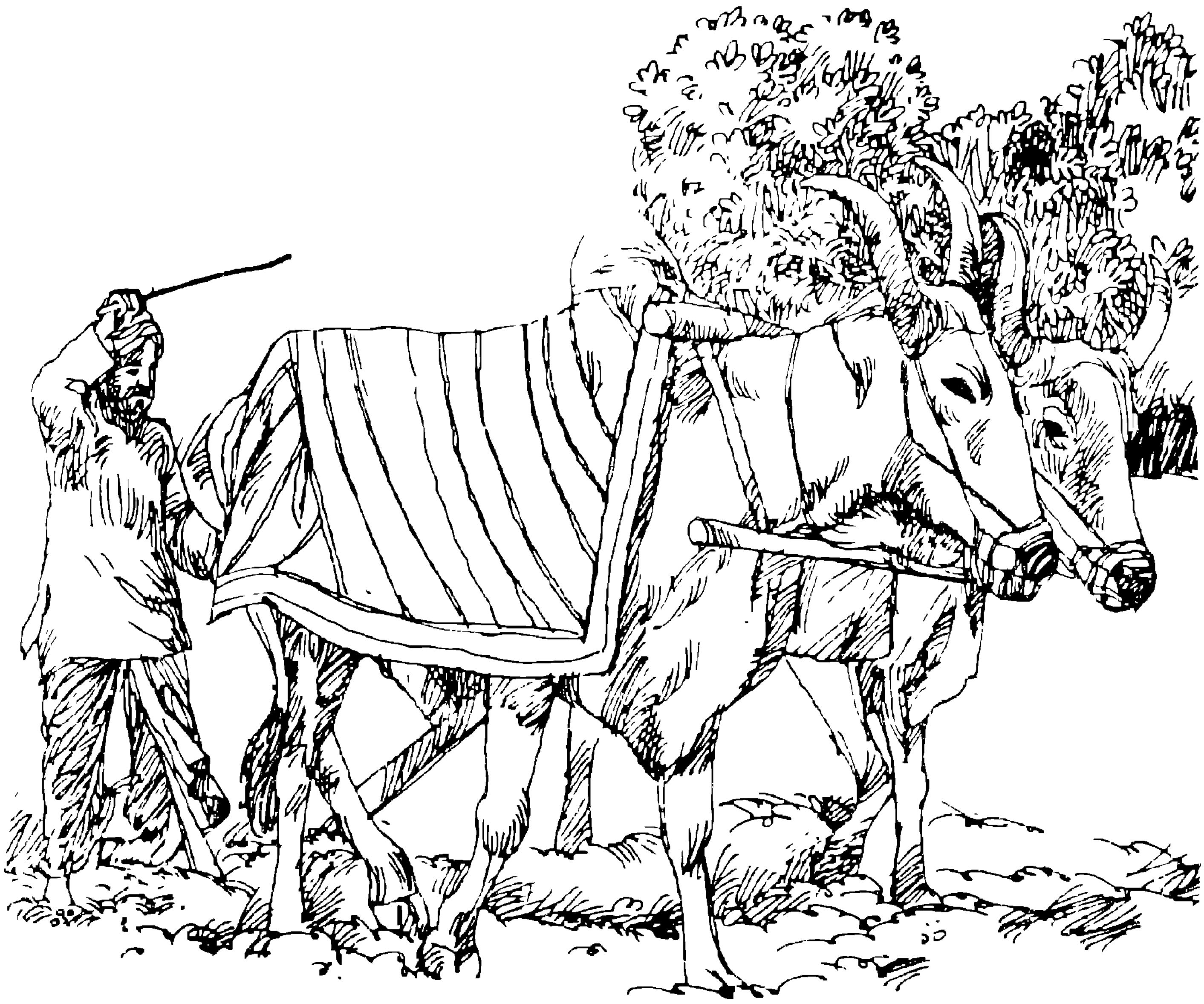
इन सभी यत्नों के होते हुए भी देश में 1876-78 में भयानक अकाल पड़ा जिसने छः करोड़ के लगभग लोगों को प्रभावित किया । सरकार की ओर से अकाल के कारणों की जांच करने के लिए 1880 में कैमिन कमिशन बनाया गया । इस कमिशन की रिपोर्ट के आधार पर खेती में कई अन्य सुधार किए गए ।

देश की खेती में कैसे सुधार किया जा सकता है यह जानने के लिए एक विशेषज्ञ डॉ. जौहन अगस्टस वोलेकर को भारत बुलाया गया जिसने अपने रिपोर्ट 1891 में दी । मिस्टर जे. मोलसिन 1901 में भारत के सबसे पहले खेती के इंस्पेक्टर जनरल बनाए गए । लार्ड कर्जन 1898-1905 तक भारत के गवर्नर जनरल रहे । उन्होंने खेती सुधारों के यत्नों को जारी रखा ताकि देश में से भुखमरी को दूर किया जा सके । कृषि पैदावार में वृद्धि के लिए सिंचाई सुविधाओं की ओर भी ध्यान जारी रखा गया ।

नहरी क्षेत्रों में उपज काफी बढ़ी । पंजाब के नये आबाद किए इलाके कृषि पैदावार में अग्रणीय बने । कृषि अनुसंधान संबंधी एक केंद्रीय अनुसंधान संस्था इम्पीरियल खेती खोज संस्था पूसा (बिहार) में स्थापित की गई । प्रांतों में खेती कालेज और कृषि विभाग स्थापित हुए। सूखे के समय किसानों के लगान माफ होने लग गए। पंजाब में एक कानून (1921) बनाया गया जिसके द्वारा किसान को साहूकारों के पंजे से छुड़ाने का यत्न किया गया। गांवों में सहकारी कर्जा- सोसाइटी बनाई गई ताकि कर्जा लेने के लिए किसानों को साहूकार के पास न जाना पड़े । नये शोध अनुसार प्रांतों में स्थानीय सरकारें स्थापित की गई। पंजाब में किसान पक्षीय सरकार बनी। इसके दो मंत्री मियां फजल हुसैन और सर छोटू राम ने किसानों के अधिकारों की रक्षा के लिए बहुत यत्न किए। मियां फजल हुसैन बाद में केंद्रीय मंत्री भी बने । उन्होंने ही पूसा में स्थित खोज संस्था को दिल्ली तबदील किया क्योंकि पूसा में भूचाल आने से काफी हानि हुई थी । नई दिल्ली में भी यह संस्था पूसा के नाम से ही जानी जाती है । कृषि खोज में और सुधार लाने हेतु इम्पीरियल खेती खोज कौंसिल, जिसको अब भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद कहा जाता है 1929 में शुरू की गई । दूसरे विश्व युद्ध के आरंभ होने से सभी विकास योजनाएं ठप्प हो गई । उस समय में बंगाल में पुन: अकाल पड़ गया । युद्ध और अकाल के कारण देश में अनाज की पुन: कमी आ गई । कृषि विकास के सभी यत्नों के होते हुए भी कृषि विकास की दर बहुत ही कम (0.11%) रही, जबकि आबादी में वृद्धि इस से तेजी से (1.5%) से होती रही । इस प्रकार आजादी समय देश में अनाज की बहुत कमी थी ।

आजादी उपरांत कृषि विकास

लंबी यातनाओं के बाद 15 अगस्त 1947 को भारत आजाद हो गया । आजादी की प्राप्ति के साथ ही देश-विभाजन का दु:खान्त प्रसंग । पाकिस्तान के नाम से एक अलग राष्ट्र बन गया । इसमें विभाजन की सबसे अधिक कीमत पंजाब और बंगाल को देनी पड़ी । क्योंकि इन दो



राज्यों का विभाजन किया गया। इस विभाजन को पक्का स्थायी बनाने के लिए आबादी का तबादला हुआ जो कि बहुत ही दुःखदायी था। लाखों लुटे-पिटे परिवार एक देश से दूसरे देश में चले गए। भारत में पहले ही अनाज का अभाव था क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि अनाज में बढ़ोत्तरी से अधिक तेजी से हो रही थी। विभाजन ने अन्न की कमी में और भी वृद्धि की क्योंकि पंजाब का उपजाऊ इलाका पाकिस्तान के हिस्से में आ गया। वैसे भी विभाजन के समय खरीफ की अधिकतर फसलें नष्ट हो गई थीं। देश की जरूरतों की पूर्ति हेतु अन्न विदेशों से मंगवाना पड़ा। खाद्य नीति संबंधी एक कमिशन 1947 में ही सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर की अध्यक्षता में स्थापित किया गया। कमिशन

ने अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की अनाज की जरूरतें पूरी करने हेतु केंद्रीय भण्डार स्थापित किए जाएं। उस समय की जरूरत को मुख्य रखते हुए उन्होंने 20 लाख टन अनाज के भण्डार संग्रह करने की सिफारिश की। कमिशन ने चाहे अनाज विदेशों से मंगवाने की सिफारिश की परंतु यह कहा कि देश में अनाज की पैदावार में प्रत्येक वर्ष एक करोड़ टन की वृद्धि करने के यत्न किए जाएं और यह वृद्धि उस समय तक जरूर होती रहनी चाहिए जब तक कि देश अनाज के सम्बद्ध में आत्म-निर्भर नहीं हो जाता। इस उद्देश्य हेतु 1947, 1950 और 1957 में और कमिशन बनाए गए। आखिरी कमिशन का नेतृत्व श्री अशोक मेहता ने किया। इस कमेटी ने अनाज के भण्डार बनाने, अनाज के व्यापार पर नियंत्रण, उपभोगताओं को नियमित करने, पैदावार में बढ़ोत्तरी के लिए विशेष यत्न तथा अनाज की निर्यात संबंधी सिफारिश की। इस कमेटी ने यह भी कहा कि अनाज की खरीद, भण्डार और बांट के संचालन के लिए एक संस्था का गठन किया जाए। इसी सिफारिश के आधार पर 1965 में भारतीय खाद्य निगम बनाया गया। किसानों को उचित मूल्य प्राप्ति को यकीनी बनाने के लिए कृषि उपभोग एवं कीमत कमिशन भी बनाया गया। लगभग सभी किसान गांवों में रहते हैं इस कारण सरकार ने खेती के साथ साथ ग्रामीण विकास की ओर भी विशेष ध्यान दिया। आजादी के प्रारंभिक दो वर्ष शरणार्थियों के पुनर्वास और देश के शासकीय ढांचे को स्थापित करने में लग गए। देश 26 जनवरी 1950 को गणतंत्र बन गया और अपना नया संविधान स्थापित कर दिया गया। देश के योग्य ढंग से योजना बनाने और अमल में लाने हेतु योजना कमिशन मार्च 1950 में बनाया गया जिसके अध्यक्ष स्वयं प्रधानमंत्री बने। श्री वी. टी. कृष्णाचारी को इसका उपाध्यक्ष बनाया गया। श्री कृष्णाचारी बहुत सूझवान प्रबंधक थे और 17 वर्ष वह बड़ौदा राज्य के दीवान रहे जहां उन्होंने राज्य के विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दिया था। कमिशन का मुख्य कार्य देश के मानवी, आर्थिक और भौतिक साधनों

का पता लगाना था और ऐसी योजना तैयार करना था जिसके कारण देश का तेजी से सर्वांग विकास हो सके । कमिशन ने विकास के लिए पांच वर्षीय योजना (1951-56) बनाई । प्रथम पांच वर्षीय योजना में ग्रामीण और कृषि विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया ।

सिंचाई सुविधाएं

यह सोचा जाता है कि खेती के विकास में सिंचाई सुविधाएं सबसे ज्यादा योगदान करती हैं । सिंचाई सुविधाओं के सर्वेक्षण से पता चला है कि देश में न्यूनतम 18.7 करोड़ एकड़ (7.6 करोड़ हैक्टेयर) भूमि की सिंचाई की जा सकती है । जबकि उस समय सिर्फ पांच करोड़ एकड़ (दो करोड़ हैक्टेयर) भूमि में ही सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध थीं । पहली पांच वर्षीय योजना समय 65 लाख एकड़ (26 लाख हैक्टेयर) और भूमि को सिंचाई अधीन लाया गया और दूसरी पांच वर्षीय योजना समय (1956-61) 50 लाख एकड़ और भूमि सीचने योग्य बनाई गई । इस काम के लिए कई डैम बनाए गए और नहरें निकाली गई । सिंचाई के साथ साथ डैम बनने से बिजली की पैदावार में भी काफी वृद्धि हुई । चाहे सिंचाई और बिजली राज्यों के अधिकार क्षेत्र में आते हैं परंतु केंद्र में सिंचाई एवं बिजली मंत्रालय स्थापित किया गया । केंद्रीय सरकार ने एक कमेटी सिंचाई के लिए और एक बिजली बोर्ड भी बनाया गया । योजना कमिशन में भी इस संबंधी एक विशेष विभाग स्थापित किया गया । केंद्रीय सरकार ने राज्यों को तकनीकी और आर्थिक सहायता देने के साथ साथ अन्तर्राजीय प्रोजेक्टों के निर्माण की ओर ध्यान देना शुरू किया । प्रत्येक राज्य को अपनी योजनाओं की स्वीकृति योजना कमिशन से प्राप्त करनी अनिवार्य कर दी गई । बंगाल और बिहार के मध्य माउरअसी दरिया पर डैम, हीरा कुंड प्रोजेक्ट उड़ीसा, रीहिंद प्रोजेक्ट उत्तर प्रदेश, तुंग भद्रा कर्नाटक, रोइना बम्बई, परवारा व काकराघरा गुजरात, भाखड़ा नंगल डैम पंजाब, चंबल मध्यप्रदेश, नागार्जुन आंध्रप्रदेश और राजस्थान नहर मुख्य सिंचाई और बिजली प्रोजेक्ट थे जो बनाये गए । इनमें से भाखड़ा

नंगल प्रोजेक्ट को सबसे बड़ा माना जाता है। भाखड़ा ऊपर से 1700 फुट लंबा 740 फुट ऊँचा है। यह दुनिया का सबसे ऊँचा दूसरा डैम माना जाता है। गोबिन्द सागर नाम की 65 वर्ग मील में एक झील बनी जिसमें 80 लाख एकड़ पानी इकट्ठा हो सकता है। इसमें से कई नहरें निकाली गई और बिजली घर बने। यह डैम पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और दिल्ली को सिंचाई एवं बिजली प्रदान करता है। सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि कृषि पैदावार में बढ़ोत्तरी की ओर लिया गया विशेष कदम था। भोजन मनुष्य के लिए सबसे पहली जरूरत है। भूखे आदमी के लिए आजादी या गणतंत्र की ज्यादा महत्ता नहीं रह जाती। इसलिए देश के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने 1948 में घोषणा की थी कि अन्य सभी कुछ पीछे पाया जा सकता है परंतु कृषि नहीं। देश की जनसंख्या की अनाज की जरूरत को पूरा करना प्रत्येक गणतंत्रीय सरकार का प्राथमिक कर्तव्य बनता है।

ग्रामीण विकास

प्रथम पांच वर्षीय योजना में कृषि एवं ग्रामीण विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया। ताकि देश की तीन चौथाई भाग की आबादी को भी आजादी का लाभ प्राप्त हो सके। गांवों के सर्वांगीण विकास के लिए देश भर में समाज के विकास के नाम पर एक विशेष कार्यक्रम बनाया गया जिसको दो अक्तूबर 1952 को आरंभ किया। इसके अधीन पहले 55 प्रोजेक्ट शुरू किए गए। प्रत्येक प्रोजेक्ट में 300 गांव शामिल किए गए और तीन विकास ब्लॉक जोड़े गए। एक विकास ब्लॉक को 100 गांवों का बनाया गया। इसमें अन्य अधिकारियों के अलावा गांवों में काम करने के लिए ग्राम सेवक नाम का एक विशेष कर्मचारी लगाया जिसके पास 10 गांवों के विकास कार्यों का तालमेल करना था। ग्रामीण विकास के इस कार्यक्रम को अगले ही वर्ष 2 अक्तूबर 1953 को राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम के नाम अधीन समूचे देश में लागू कर दिया गया। सारे देश को 100 गांवों के एक ब्लॉक के आधार पर विकास

ब्लाकों में बांट दिया गया। प्रत्येक ब्लॉक के लिए एक विशेष इमारत बनाई गई और अन्य सुविधाएं दी गई। ब्लॉक का मुखिया ब्लॉक विकास अफसर बनाया गया। उसकी सहायता के लिए ग्रामीण विकास के मुख्य अंगों से संबंधी तकनीकी कर्मचारी दिये गए जिनको विस्तार अधिकारी का नाम दिया गया। इनमें खेती सहकारिता, लोग निर्माण, सेहत, ग्रामीण महिलाएं आदि मुख्य हैं। ग्रामीण स्तर पर प्रत्येक ब्लॉक में 10 ग्राम सेवक लगाए गए। ग्रामीणों के सहयोग से सारे देश में ग्रामीण विकास की एक लहर आरंभ हो गई। इस योजना के नीचे 1960-61 तक सारा देश आ गया। इस कार्यक्रम के अधीन चाहे ग्रामीण विकास का काम तेजी से शुरू हुआ परंतु कृषि उत्पादन में वृद्धि आवश्यकतानुसार न हो सकी।

घनी खेती जिला प्रोग्राम

कृषि में ग्रामीण विकास के लिए किए यत्नों से भी खेती पैदावार में वृद्धि न हो सकी और 1958-59 में सिर्फ 660 लाख टन ही अनाज पैदा हुआ। देश की जरूरतों को पूरा करने हेतु विदेशों से अनाज मंगवाने को विवश होना पड़ा। अनाज के उत्पादन में वृद्धि के लिए विचार करने हेतु फोर्ड फाउंडेशन की मदद से एक अमेरिकी एवं भारतीय विशेषज्ञों की कमेटी बनाई गई। इस कमेटी ने यह सुझाव दिया कि खेती पैदावार में वृद्धि के लिए उन इलाकों में विशेष यत्न किए जाएं, जहां सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हैं या जरूरत अनुसार वर्षा हो जाती है। यह भी निर्णय हुआ कि आरंभ में सिर्फ गेहूँ और धान के उत्पादन में वृद्धि हेतु यत्न किए जाएं। इस कार्यक्रम को चुने हुए सात जिलों में 1961 में लागू किया गया। तेनजोर (मद्रास), वैस्ट गोदावरी (आंध्र प्रदेश), शाहाबाद (बिहार), रायपुर (मध्य प्रदेश), अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश), लुधियाना (पंजाब) और पाली (राजस्थान) जिले इस प्रोग्राम के लिए चुन लिए गए। इस प्रोग्राम का नाम घनी खेती जिला प्रोग्राम रखा गया। इस को पैकेज प्रोग्राम भी कहा जाता है। इस प्रोग्राम के अधीन आते विकास कर्मचारियों को अपना सारा ध्यान कृषि के विकास की ओर लगाने को कहा गया। जिला

स्तर पर एक विशेष पायलट प्रोजेक्ट अफसर लगाया गया । प्रत्येक ब्लॉक में कृषि विकास अधिकारियों की संख्या पांच और ग्राम सेवकों की संख्या 20 कर दी गई । कृषि विकास अफसरों को आदेश दिया गया कि वह अपने इलाके के सारे किसानों की सालाना खेती नीति बनाएं, जिसमें प्रत्येक किसान की कृषि जरूरतों का भी अनुमान लगाया जाए । किसानों को बीज, खाद, कृषि यंत्र, कीटनाशक दवाएं आदि देने का विशेष प्रबंध किया गया । इनकी खरीद के लिए सहकारी सभाओं द्वारा ऋणों की सुविधाएं दी गई । यह प्रोग्राम एक आंदोलन के रूप में चलाया गया जिसके कारण कृषि पैदावार में वृद्धि हुई । इस प्रोग्राम की कामयाबी को देखते हुए एक नया कार्यक्रम घनी खेती इलाका प्रोग्राम मार्च 1964 में शुरू किया गया । इस कार्यक्रम अधीन जिले के स्थान पर विशेष इलाके चुने गए । इस प्रोग्राम में पैकेज प्रोग्राम से सुविधाएं कम थीं परंतु सारा जोर कृषि विकास पर था । राष्ट्रीय स्तर पर प्रोग्राम की निगरानी हेतु एक डायरेक्टर जनरल लगाया गया । इस प्रोग्राम को लोगों तक पहुंचाने के लिए रेडियो को साथ जोड़ा गया और मुख्य रेडियो स्टेशनों पर फार्म सूचना यूनिट स्थापित की गई । रेडियो द्वारा कृषि विकास संबंधी विशेष कार्यक्रम शुरू हुए । कृषि के शुरू हुए इस प्रोग्राम द्वारा आकाशवाणी ने भारत के कृषि विकास में बहुत ही प्रशंसनीय योगदान पाया है ।

कृषि ऋण

कृषि के विकास के लिए खेती जरूरतों के उपयोग की अत्यंत आवश्यकता है । सुधरे बीज, रासायनिक खादें, कीट और बीमारियों की रोकथाम के लिए रसायनों का प्रयोग, सिंचाई का प्रबंध, मशीनों आदि का प्रयोग किए बगैर कृषि पैदावार में वृद्धि संभव नहीं है । किसानों के पास अपने आर्थिक साधन इतने नहीं होते कि वह इन वस्तुओं को ज़रूरत अनुसार खरीद सकें । देश में ज्यादा संख्या छोटे किसानों की है जिनके आर्थिक साधन सीमित हैं । अपनी आर्थिक जरूरतों की पूर्ति हेतु उनको ऋणों की आवश्यकता पड़ती है, जिसके लिए उनको साहूकारों के चंगुल

में फंसना पड़ता है। साहूकारों की ब्याज दर इतनी अधिक होती है कि किसान की सारी आय साहूकारों के ही हवाले हो जाती है। इस सदी के आरंभ में तो ऐसी स्थिति थी कि ऋण कई पीढ़ियों तक चला जाता था। किसान को साहूकारों के चंगुल में से निकालने हेतु और खेती के सुधरे ढंगों के प्रयोग को उत्साहित करने के लिए सरकार की ओर से रियायती



पक्की खेती देखकर गर्व करे किसान

दरों पर ऋण देने संबंधी विचार किया गया।

इस संबंधी जानकारी प्राप्त करने हेतु रिजर्व बैंक ने 1951 में ग्रामीण

ऋण के सर्वेक्षण के लिए एक कमेटी बनाई। इस कमेटी ने बताया कि सहकारी सभाओं और सरकार की ओर से किसानों की ऋण आवश्यकताओं का सिर्फ 6 प्रतिशत ही पूरा किया जाता है। शेष सारा ऋण साहूकारों से ही प्राप्त होता है। इस कमेटी ने बहुत सी सिफारिशें की – जिनमें से अधिकतर दूसरी पांच वर्षीय योजना (1956-61) में लागू करने का यत्न किया गया। प्रत्येक गांव में सहकारी सभा बनाने के उपाय किए गए। स्टेट बैंक आफ इण्डिया 1955 में बनाया गया। कृषि ऋण और विकास निगम 1963 में बनाई गई। इन यत्नों से सहकारी ऋणों का हिस्सा तीन प्रतिशत से बढ़कर 1961-62 में 15 प्रतिशत हो गया। इस कार्यक्रम का मूल्यांकन करने के लिए 1966 में संपूर्ण भारतीय ग्रामीण ऋण मूल्यांकन कमेटी बनाई गई जिसने अपनी रिपोर्ट 1969 में दी। इस कमेटी ने छोटे किसानों के विकास और बिजली के विभाग के लिए विशेष एजेंसियां बनाने का सुझाव दिया। इन्होंने बैंकों के योगदान की भी सिफारिश की। सरकारी यत्नों द्वारा ग्रामीण सहकारी ऋण सभाओं की संख्या जो 1950-51 में 10500 थी बढ़ कर 1968-69 में 16800 हो गई। सदस्यों की संख्या 44 लाख से बढ़ कर 290 लाख और रकम 3720 लाख से बढ़कर 81220 लाख रुपए हो गयी। सरकार की ओर से 19 जुलाई 1969 को बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इन बैंकों के जिम्मे विकास कार्यों के लिए ऋण देने का काम भी लगाया गया। प्रत्येक ज़िले की जिम्मेदारी एक बैंक को विशेष तौर पर दी गई।

अन्य सुधार

यहां कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु विशेष यत्न किए गए, वहां इस ओर भी ध्यान दिया गया कि किसान को उसकी पैदावार का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। यह देखा गया कि कटाई के समय फसलों के भाव मण्डी में कम हो जाते थे और व्यापारी सस्ते दामों पर अनाज की खरीद करते थे। इस लूट को दूर करने हेतु 1965 में खेती कमिशन बनाया गया। इस कमिशन के जिम्मे गेहूँ, और चने का न्यूनतम भाव निश्चित करना था

ताकि उस मूल्य से कम किसान की पैदावार खरीदी ना जा सके। बाद में अन्य फसलों के दाम निर्धारित करने की ज़िम्मेवारी भी इसी कमिशन को दी गई। निश्चित दाम पर सरकारी खरीद करने, अनाज के भण्डार और पुनः विक्रय-प्रबंध करने हेतु 1965 में ही भारतीय खाद्य निगम की स्थापना की गई। अनाज के भण्डार करने हेतु वेयर हाऊसिंग निगम बनाया गया। गरीब लोगों को उचित दाम पर अनाज देने हेतु सस्ते मूल्य की दुकानें बनाई गई।

भूमि सुधारों की ओर भी ध्यान दिया गया क्योंकि यह देखा गया कि कृषि का विकास वहां पर ही हो सकता है जहां भूमि के मालिक स्वयं खेती करने वाले हों। इस कारण जमींदारी निज़ाम को समाप्त कर दिया गया। भूमि पालकों को सीमा की अधिकतम सीमा निश्चित कर दी गई। यह निश्चित किया गया कि एक परिवार 4-7 हैक्टेयर चारी और दो-फसली भूमि रख सकता है, परन्तु बारानी और एक फसली भूमि का रकबा 10 हैक्टेयर कर दिया गया। यह कानून 1973 तक लगभग सारे देश में लागू हो गया था। खेती उपज में वृद्धि हेतु खेती अनुसंधान एवं शिक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया, जिसके बारे में अलग से विचार किया जाएगा। सरकारी कोशिशों, नई टैक्नालोजी और किसानों के साहस से खेती में वृद्धि तेजी से हुई। इसके परिणाम स्वरूप अनाज के उत्पादन की दर आबादी में वृद्धि की दर से बढ़ गई और देश अनाज के क्षेत्र में आत्म-निर्भर हो गया। जो देश दूसरों के आगे अनाज के लिए ठूठा पकड़े फिरता था, वह अब जरूरत पड़ने पर दूसरों की अनाज के साथ सहायता कर सकता है। अनाज की वार्षिक पैदावार जो 1950 में 5 करोड़ टन थी वह 1965 में बढ़कर 9 करोड़ टन हो गई और 1994-95 में यह 19 करोड़ टन से भी बढ़ गई। इस प्रकार कृषि के विकास में भारत ने चमत्कार कर दिखाया जिसको हरी क्रांति भी कहा जाता है। देश में सिर्फ अनाज के पैदावार में ही वृद्धि नहीं हुई बल्कि अन्य फसलों में भी बढ़ोत्तरी हुई। कुछ मुख्य फसलों की उपज में हुई वृद्धि का विवरण नीचे

दिया जाता है :

फसल	पैदावार (मिलीयन टन)		झाड़ किलोग्राम	प्रति हैक्टेयर
	1955-56	1997-98	1955-56	1997-98
धान	27.6	82.30	874	1931
गेहूँ	8.8	65.91	70.8	2573
मक्की	2.6	10.82	704	1483
बाजरा	3.4	7.70	302	713
मूंगफली	3.9	8.38	752	1042
गन्ना	80.5	27.62	32779	71112
कपास (लाख गाड्डें)	49.0	11.10	88	260
तेल बीज	5.2	22.02	448	811

इसी प्रकार फलों, सब्जियों, दूध, अण्डे, शहद, खुंब, मछलियां, चाय, काफ़ी आदि की उपज में भी तेजी से वृद्धि हुई है । भारत में इस समय संसार के किसी भी अन्य देश से अधिक फल पैदा होते हैं । दूध और सब्जियों की पैदावार में हमारा पहला स्थान है ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत ने गत बीस वर्षों में कृषि विकास बड़ी तेज़ी से किया है परंतु अभी बहुत कुछ और करना शेष है । जिस तेज़ी से हमारी जनसंख्या में वृद्धि हो रही है उसी तेज़ी से हमें कृषि उपज में वृद्धि करनी पड़ेगी । एक अनुमान अनुसार अगामी दस वर्षों तक हमें 24 करोड़ टन अनाज की जरूरत पड़ेगी । इसी तरह अन्य फसलों संबंधी भी कहा जा सकता है । घनी खेती कारण हमारी भूमि की भौतिक दशा बिगड़ रही है और सिंचाई के लिए पानी की कमी अनुभव हो रही है । चाहे हमने भूखमरी को रोक लिया है परन्तु अभी भी हमारी आधी आबादी को ज़रूरत मुताबिक भोजन प्राप्त नहीं है । एक अनुमान अनुसार पौधों की कोई दो करोड़ जातियां हैं, जिनमें 50,000 को खाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है । परंतु हमने सिर्फ 200 पौधों को ही खाने हेतु प्रयोग किया है । हमारे भोजन का लगभग 80 प्रतिशत केवल आठ जातियों से ही पूरा होता है । अब तक हमारे सारे यत्न इनकी पैदावार में

वृद्धि करने पर ही लगे रहे हैं। जो पौधे हमारे भोजन में शामिल नहीं उनको शामिल करना चाहिए। बहुत से पौष्टिक अनाज निम्न अनाज वर्ग में आते हैं। अब समय आ गया है जब इन पौधों से प्राप्त अनाज को भोजन में प्रयोग बढ़ाना होगा। इन पौधों को पानी की भी कम ज़रूरत है और भोजन की भी कम ज़रूरत है। संसार मण्डी खुल जाने से हमें उपज की गुणवत्ता की ओर ध्यान देना पड़ेगा। विदेशी मण्डी में गुणवत्ता के ऊपर अधिक बल दिया जाता है। इस प्रकार अब हमें अपनी खेती को एक और दिशा देने की जरूरत है ताकि हम अपनी पैदावार बढ़ोत्तरी ही न करें अपितु उसको उत्तम भी बना सकें। भूमि की उपजायक्ता, पानी की संभाल और पर्यावरण की स्वच्छता बनाए रखना हमारी सब की ज़िम्मेवारी है।

कृषि अनुसंधान और शिक्षा

विकास का आधार योग्य टेक्नोलॉजी है। यदि अच्छी टेक्नोलॉजी प्राप्त नहीं होगी तो उपज में वृद्धि असंभव है। आजादी उपरांत कृषि अनुसंधान एवं कृषि-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया ताकि अच्छी टेक्नोलॉजी प्राप्त हो सके, अच्छे विज्ञानी और उद्यमी अच्छे काम करें। पिछली सदी के अंत में कई भयंकर अकाल पड़े। इनको दूर करने हेतु अंग्रेजों की ओर से एक अकाल कमिशन बनाया गया। इस कमिशन की सिफारिशों के आधार पर कृषि अनुसंधान और शिक्षा की ओर इस सदी के शुरू में अंग्रेजों द्वारा कुछ ध्यान दिया गया ताकि देश में से भुखमरी को दूर किया जा सके। सबसे पहले बिहार में पूसा शहर में इम्पीरियल कृषि अनुसंधान संस्था बनाई गई। पूसा में भूचाल आने पर इस को बाद में नई दिल्ली तब्दील कर दिया गया। अब इसको भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था के नाम से जाना जाता है। यह संस्था कृषि अनुसंधान और उच्च शिक्षा का एक बढ़िया केंद्र है। कृषि-शिक्षा की ओर भी इस सदी के आरंभ में ध्यान दिया गया और 1906-1907 में छः कृषि कालेज खोले गए। यह स्थान थे – कानपुर, लायलपुर, नागपुर,

पूना, साबौर और कोयम्बूर । पहले यहां डिप्लोमा तक की पढ़ाई होती थी जो कि बाद में डिग्री तक कर दी गई । कृषि विकास को और तेज करने के लिए एक रायल खेती कमिशन बनाया गया । इस कमिशन की सिफारिशों के आधार पर इन कालेजों में 1930 के पास उच्च शिक्षा की पढ़ाई भी आरंभ कर दी गई । कृषि अनुसंधान का नेतृत्व करने के लिए एक केंद्रीय कौंसिल, इम्पीरीयल कौंसिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्चर बनाई गई । आज़ादी उपरांत इसका नाम भारतीय कृषि अनुसंधान कौंसिल कर दिया गया । आज़ादी समय देश में सिर्फ 17 केंद्रों पर कृषि संबंधी पढ़ाई होती थी । कृषि अनुसंधान और शिक्षा की देखभाल राज्यों के कृषि विभागों के जिम्मे थी । आज़ादी पश्चात् डॉ. राधा कृष्णन जी के नेतृत्व में एक शिक्षा कमिशन 1948 में कायम किया गया ताकि देश में शिक्षा का सुधार किया जा सके । इस कमिशन ने सिफारिश की कि अमेरिका की तरह भारत में भी ग्रामीण विश्वविद्यालय बनाए जाएं जहां पर कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा संबंधी लोग जरूरत के अनुसार काम करें । इस सिफारिश के आधार पर 1954 में एक इंडो-अमेरिकन टीम बनाई गई जिसको दोनों देशों की शिक्षा-संस्थाओं की तुलना करके भारत के लिए योग्य शैक्षणिक ढंग की सिफारिश करने के लिए कहा गया । इस टीम की सिफारिश के आधार पर 1955 में देश के सभी कृषि और पशु चिकित्सा कालेज पांच अमेरिकी विश्वविद्यालयों से जोड़ दिये गए । देश में कृषि विश्वविद्यालयों की रूप रेखा तैयार करने हेतु दूसरी इण्डो-अमेरिकन टीम 1959 में बनाई गई । अगले ही वर्ष अमेरिकी विशेषज्ञ कुसिंग के नेतृत्व में एक अन्य कमेटी बनाई गई जिस ने कृषि विश्वविद्यालयों की रूप रेखा तैयार की । यह निर्णय हुआ कि अनुसंधान, पढ़ाई और प्रसार शिक्षा का कार्य एक ही विश्वविद्यालय के जिम्मे लगाया जाए । पहला कृषि विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश के जिला नैनीताल में पंतनगर में बना । गोविन्द वल्लभ पंत जी इस क्षेत्र के प्रतिनिधि थे और देश के गृहमंत्री थे । उनके यत्नों से ही यह विश्वविद्यालय बन

सका । इससे पहले इस तराई के क्षेत्र को आबाद करके कृषि योग्य बनाने का अभियान आरंभ किया गया था । पंजाब में से बहुत से किसानों ने इस क्षेत्र में जाकर इस इलाके को अपने परिश्रम से आबाद किया और कृषि विकास का केंद्र बनाया । इसके पश्चात् 1962 में उड़ीसा और पंजाब में कृषि विश्वविद्यालयों की नींव रखी गई । तीसरी पांच वर्षीय योजना दौरान देश में सात कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई । जिन राज्यों में यह विश्वविद्यालय बनाए गए उन के नाम थे – उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, पंजाब, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश और मैसूर । विभिन्न राज्यों ने माडल एक्ट से हटकर कई परिवर्तन किए, जिस कारण सभी केंद्र समान नहीं बन सके । आरंभिक दिनों में अमेरिका की ओर से काफी मदद की गई । प्रत्येक भारतीय कृषि विश्वविद्यालय को एक अमेरिकी विश्वविद्यालय से जोड़ा गया । अमेरिकी विशेषज्ञ भारत आए और भारतीय विज्ञानी उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका गए । भारतीय शैक्षणिक ढांचे की पुनर्जांच करने के लिए एक और कमिशन डॉ. डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में 1964 में बनाया गया । इस कमिशन ने सिफारिश की कि प्रत्येक प्रांत में ही कृषि विश्वविद्यालय बनाया जाए और कृषि अनुसंधान तथा शिक्षा की सारी जिम्मेवारी इस संस्था को दी जाए । इन संस्थाओं ने खेती अनुसंधान, शिक्षा और शोध के परिणामों को किसानों तक पहुंचाने में बड़ा प्रशंसनीय काम किया है । इस समय देश में 29 कृषि विश्वविद्यालय हैं – जिनमें लगभग 52280 विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं और 22451 विज्ञानी काम करते हैं । इन संस्थाओं के नीचे 161 कालेज हैं जो विभिन्न स्थानों पर स्थित हैं । कुछ राज्यों में स्थानीय ज़रूरतों के अनुसार एक से अधिक संस्थाओं को भी विश्वविद्यालय का पद दे दिया गया है । बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी और विश्वभारती में भी कृषि संबंधी बढ़िया कालेज हैं । कई अन्य विश्वविद्यालयों में भी संबंधित कृषि कालेज देश में हैं । भारतीय कृषि शिक्षण प्रबंध संसार में सबसे बड़ा माना जाता है । जहां

कृषि और संबंधित विषयों में डिग्री प्रोग्राम और 60 विषयों में उच्च शिक्षा का प्रबंध है । इन संस्थाओं में प्रत्येक वर्ष लगभग 9000 विद्यार्थी डिग्री प्रोग्राम, 5000 एम. एस. सी. और 1500 विद्यार्थी पी. एच. डी. की शिक्षा हेतु प्रवेश पाते हैं ।

इन संस्थाओं में शिक्षा का सारा प्रोग्राम औपचारिक संस्थाओं से भिन्न है । यहां पढ़ाने वाले अध्यापक स्वयं ही परीक्षा लेते हैं और आप ही परिणाम तैयार करते हैं । परिणाम विद्यार्थी की संपूर्ण कारगुज़ारी पर आधारित होता है । ज्यादा संस्थाएं अर्धवार्षिक ढंग प्रयोग में लाती हैं । सभी शिक्षक शिक्षा के साथ साथ अनुसंधान और शिक्षा विस्तार का काम भी करते हैं । सभी विश्वविद्यालयों में आम तौर पर पांच मुख्य कालेज कृषि, कृषि टेक्नोलॉजी इंजीनियरिंग वेटनरी, होम साइंस और बेसिक साइंसेज कालेज हैं । पाठ्यक्रम में प्रांत की जरूरतों को मुख्य रखकर आवश्यक परिवर्तन किए जाते रहते हैं ।

अनुसंधान

कृषि के विकास का मूल्यांकन करने के लिए एक अमेरिकी, ब्रिटिश और भारतीय विशेषज्ञों का दल 1963 में कायम किया गया । इस दल ने 1964 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और सिफारिश की कि भारतीय कृषि अनुसंधान कौंसिल का पुनर्गठन किया जाए ताकि यह देश में कृषि अनुसंधान और शिक्षा के हो रहे यत्नों में एक अच्छा संबंध बना सके । चाहे कृषि प्रांतीय अधिकार क्षेत्र में आता है पर केंद्रीय कौंसिल का काफी विस्तार किया गया और बहुत से केंद्रीय अनुसंधान केंद्र खोले गए । कृषि विश्वविद्यालय का संबंध भी इसी कौंसिल से जोड़ा गया । आजादी के समय देश में सिर्फ नौ (9) कृषि अनुसंधान केंद्र थे, जबकि अब 45 केंद्रीय अनुसंधान केंद्र हैं जिनके आगे कई उप अनुसंधान केंद्र हैं । कृषि अनुसंधान, केंद्रीय अनुसंधान केंद्रों, कृषि विश्वविद्यालयों, कई अन्य विश्वविद्यालयों कृषि मंत्रालय और कुछ संबंधित अन्य विभागों की ओर से की जाती है । केंद्रीय कौंसिल इन संस्थाओं के अनुसंधान में

सिर्फ तालमेल ही नहीं करती बल्कि आर्थिक मदद भी देती है । कौंसिल के पुनर्गठन के समय केंद्रीय मंत्रालय में कृषि अनुसंधान और शिक्षा का अलग विभाग बनाया गया । इस मंत्रालय का सचिव और कौंसिल का डायरेक्टर जनरल एक वैज्ञानिक को बनाया गया । इस प्रकार प्रांतों और विदेशों से संपर्क बढ़िया और आसान हो गया। भारतीय कृषि अनुसंधान केंद्र नई दिल्ली, भारतीय डेयरी अनुसंधान केंद्र करनाल, भारतीय वेटनरी अनुसंधान संस्था इजैटगर और केंद्रीय मछली पालन अनुसंधान संस्था कोचीन को विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया है । पूर्वी राज्यों के कृषि विकास के लिए एक केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय भी 1993 में स्थापित किया गया । कौंसिल की ओर से अपने वैज्ञानिकों का चयन करने के लिए एक स्थायी बोर्ड भी 1975 में बना दिया गया और इस सेवा को कृषि अनुसंधान सेवा का नाम दिया गया है । कौंसिल की ओर से केंद्रीय अनुसंधान संस्थाओं के अलावा कौमी ब्यूरो, प्रोजेक्ट, डायरैक्टोरेट, को आर्डीनेटिड अनुसंधान प्रोजेक्ट और राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र हैं । कौंसिल का मुख्य उद्देश्य कृषि संबंधी शोध करवाना, कृषि की शोध के परिणामों की देश भर में जांच करना और वैज्ञानिकों को प्रशिक्षण देना है । देश भर में 45 अनुसंधान संस्थाएं समूची कृषि अनुसंधान या किसी विशेष विषय संबंधी या एक फसल ऊपर अपने मुख्य और सब-केंद्र द्वारा अनुसंधान करती हैं । इनमें से कुछेक में पढ़ाई का भी प्रबंध है । कौंसिल की ओर से चार राष्ट्रीय ब्यूरो बनाए गए हैं जो पौधों, जानवरों, मछली और भूमि संबंधी जानकारी एकत्र करते और उस की संभाल करते हैं । केंद्रीय अनुसंधान केंद्र उन विषयों, फसलों, फलों, सब्जियों आदि के लिए बनाए गए हैं जिन के संबंध में केंद्रीय अनुसंधान संस्थाएं विशेष ध्यान नहीं देतीं ।

सर्व भारतीय संपर्क अनुसंधान प्रोजेक्टस

इन अनुसंधान प्रोजेक्टस द्वारा केंद्रीय अनुसंधान संस्थाएं, कृषि विश्वविद्यालय, प्रांतों के विभाग और स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा

अनुसंधान कराया जाता है । इस ढंग से एक फसल संबंधी सभी विषयों पर और विभिन्न स्थानों पर शोध होती है । इन स्थानों के सभी विज्ञानी प्रत्येक वर्ष इकट्ठे होकर अपनी उपलब्धियों का आदान-प्रदान करते हैं । इस प्रकार किसी भी विषय संबंधी सारे देश में हो रही खोज का परस्पर संपर्क बना रहता है और शोध परिणामों का आदान-प्रदान होता है । सबसे पहला सर्वभारतीय प्रोजेक्ट मक्की ऊपर 1975 में शुरू किया गया । इस की कामयाबी से प्रभावित होकर अब लगभग सभी मुख्य फसलों, पशु पालन, मछलियां, भूमि, कृषि इंजीनियरिंग, फल, सब्जियां और गृहविज्ञान आदि विषयों संबंधी प्रोजेक्टस चल रहे हैं । कुछ मुख्य फसलों पर शोध कार्यों के लिए अलग प्रोजेक्टस डायेरैक्टोरेट बनाए गए हैं । इस समय 10 ऐसे प्रोजेक्ट काम कर रहे हैं । अच्छी शोध और प्रशिक्षण के लिए कुछ अच्छे केंद्र (सैंटर आफ एक्सेलेंस) भी स्थापित किए गए हैं । कृषि शोध प्रत्येक क्षेत्र की ज़रूरतों मुताबिक होनी चाहिए । इस आवश्यकता को मुख्य रखकर राष्ट्रीय कृषि शोध प्रोजेक्ट शुरू किया गया जिसके अंतर्गत कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा क्षेत्रीय शोध केंद्र स्थापित किए गए हैं । इस प्रोजेक्ट के अधीन देश के सभी 120 कृषि मौसम इलाकों संबंधी शोध केंद्र खोले जा रहे हैं । भारतीय कृषि शोध कौंसिल अंतर्राष्ट्रीय शोध केंद्रों और दूसरे देशों से भी संपर्क रखती है ताकि तकनीक का फैलाव शीघ्रातिशीघ्र हो सके । कृषि विश्वविद्यालयों तथा अन्य विभागों की ओर से की जा रही खोज से संपर्क भी कौंसिल द्वारा ही किया जाता था । सभी शोध केंद्रों और कृषि विश्वविद्यालयों को कंप्यूटर की सहायता से जोड़ा गया है ताकि भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों से भी ज्ञान का आदान-प्रदान हो सके । शोध के साथ-साथ ही कौंसिल कृषि संबंधी नई जानकारी को किसान नेताओं और कृषि अफसरों तक पहुंचाने के लिए प्रशिक्षण कार्य भी करती है । हैदराबाद में मुख्य प्रशिक्षण केंद्र है । किसान नेताओं और विस्तार कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देने के लिए देश के सभी ज़िलों कृषि विज्ञान केंद्र स्थापित किए

जा रहे हैं । नई खोजों पर आधारित वैज्ञानिकों की ओर से किसानों के खेतों पर काफी प्रदर्शनीय प्लांट भी लगाए जाते हैं, ताकि नये ज्ञान का अच्छा रूप किसान अपने खेतों में अपनी आंखों से देख सकें । यह माना जाता है । कि भारत का कृषि अनुसंधान प्रबंध विश्व में सबसे बड़ा है और बढ़िया काम कर रहा है ।

कृषि अनुसंधान और शिक्षण में राज्यों की कृषि यूनिवर्सिटीओं में बहुत ही सराहनीय कार्य हुआ है । इन संस्थाओं ने राज्य की जरूरत मुताबिक टेक्नोलॉजी विकसित की है और उसे किसानों तक पहुंचाया है । भारतीय किसानों का कृषि वैज्ञानिकों के ऊपर ईश्वर जैसा विश्वास है । वह अपनी प्रत्येक मुश्किल का हल ढूंढ़ने के लिए वैज्ञानिकों तक पहुंच करते हैं । देश में हुए कृषि विकास में कृषि विश्वविद्यालयों की विशेष भूमिका है । इनका पाठ्यक्रम लचीला है, जिस में राज्य की ज़रूरतों अनुसार परिवर्तन किए जाते रहते हैं । अनुसंधान, शिक्षण और विस्तार के एकीकरण से वैज्ञानिकों के विचार ज्यादा व्यावहारिक हो गए हैं । वैज्ञानिकों का विद्यार्थियों तथा किसानों से सीधा संबंध होने के कारण शोध एवं शिक्षण का कार्य अच्छा, जरूरत मुताबिक और ज्यादा व्यावहारिक हुआ है । भविष्य की खेती इन संस्थाओं के लिए एक नयी चुनौती है । जिस प्रकार इन संस्थाओं ने सातवें दशक में देश में से भूखमरी को दूर किया है, उसी प्रकार अब इन्होंने कृषि अनुसंधान को ऐसा नया मार्ग देना है जिस के द्वारा उपज में वृद्धि हो, पैदावार बढ़िया और स्थिर हो, भूमि की उपजायिक्ता बनी रहे, पानी का प्रयोग संयम से हो तथा पर्यावरण को प्रदूषित होने से रोका जा सके । अब कुछ प्राईवेट और बहुदेशीय कंपनियां भी अनुसंधान के क्षेत्र में आ गई हैं । हमारे वैज्ञानिकों को इनका भी मुकाबला करना है, ताकि किसान को उत्तम टेक्नोलॉजी, उस के द्वार पर ही उचित नेतृत्व के साथ प्राप्त हो सके ।

2

कृषि में यंत्रों और मशीनों का प्रयोग

कृषि विकास में यंत्रों और मशीनों की विशेष भूमिका है। सबसे पहले कृषि में पत्थरों के यंत्रों का प्रयोग शुरू हुआ। नुकीले पत्थरों से धरती में सुराख करके बोआई की जाती थी। तीखी धार वाले पत्थरों से ही फसल की कटाई होती थी। यंत्रों में थोड़ा और सुधार हुआ, जब पत्थरों को पालिश करके और तीखी धार बनाई गई। हल का प्रयोग सबसे पहले मैसोपोटेमिया में सुमेरिया ने किया। आरंभ में यह किसी पेड़ की दुशाखा टहनी ही थी। भारत में भी हल मैसोपोटेमिया से ही आया लगता है। हल संबंधी सबसे पुराना जिक्र 2900 बी. सी. का प्राप्त होता है। भारत में काली भंगा नामक स्थान पर कोई 2300 बी. सी. के पास के जोते हुए खेत मिले हैं। हल खींचने के लिए सबसे पहले बैलों को ही काम में लाया गया। इसी तरह सवारी के लिए सबसे पहले पहिया रहित गाड़ियां आयीं। परंतु पहिये के आविष्कार ने मानवीय जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। पहिया भी पहले पहल सुमेरियां में ही प्रयोग में लाया गया माना जाता है। भारत में सिन्धु घाटी की सभ्यता में पहिये वाले रथ का जिक्र कोई 2300 बी. सी. का मिलता है। हल और पहिये के प्रयोग ने कृषि में बढ़ोत्तरी की जिस से यह मनुष्य का मुख्य धंधा बन गया। दानों को पीसने के लिए सिलबट्टे की मदद भी कृषि विकास के साथ ही शुरू हुई। कृषि के विकास से फसलों का जंगली जानवरों तथा पक्षियों से बचाव भी अत्यंत आवश्यक था। मनुष्य ने

फसलों की रक्षा चबूतरा (मना) बनाकर गोपिये द्वारा शुरू की जिस में मिट्टी की गोलियां प्रयोग की जाती थीं । फसलों की रक्षा का यह तरीका आज तक भी प्रचलित है ।

कृषि यंत्रों में वास्तविक प्राप्ति लकड़ी के दस्तों की है । पत्थरों के कुल्हाड़े, दातियां और कहियों को लकड़ी के दस्ते लगने से उन की कार्यकुशलता में वृद्धि हुई । कृषि जिसे स्त्रियों ने शुरू किया था को अब पुरुषों ने संभाल लिया । उन्होंने दानों की संभाल के लिए मिट्टी के बर्तन बनाने और टोकरियां बुनना शुरू किया । टोकरियों की बुनाई से ही कपड़े बुनने का विकास हुआ लगता है ।

हल को प्रयोग में लाना कृषि में पहली क्रांति थी और लोहे के प्रयोग को कृषि में द्वितीय क्रांति माना जाता है । हल और पहिये के प्रयोग के साथ ही मध्य-पूर्व एशिया में धातुओं को काम में लाना आरंभ हुआ । ताम्बा और पीतल दो मुख्य धातुएं थीं । कांसी की वस्तुएं अधिक बनती थीं । इसी कारण इस युग को कांसी का युग भी कहा जाता है । लोहे का आविष्कार भी 1400 बी. सी. के आस पास मध्य-पूर्व एशिया में हुआ माना जाता है । लोहे का प्रयोग भी मनुष्य की एक महान् प्राप्ति है । लोहे को पिघलाने के लिए ऊंचे तापमान की जरूरत है और इसको सख्त बनाने के लिए उचित मात्रा में कार्बन चाहिए ।

भारत में सबसे पहले जो आर्य लोग आए वह लोहे के प्रयोग से वाकिफ़ न थे पर 1000 बी. सी. के आसपास लोहे के प्रयोग संबंधी जानकारी रखने वाले बहुत से आर्य लोग भारत आए । इन्होंने लोहे की कुल्हाड़ी और हल में लोहे के फाले का प्रयोग आरंभ किया । नये लोगों को और भूमि की कृषि हेतु ज़रूरत थी । जिसे जंगलों को साफ करके ही प्राप्त किया जा सकता था । लोहे की कुल्हाड़ी ने जंगल काटने में सहायता की । इस जंगल की सख्त भूमि को उखाड़ने के लिए लोहे के फाले वाले हल ने काम आसान बना दिया । इस प्रकार बहुत सी भूमि कृषि उपयोगी बनी जिससे उपज में वृद्धि हुई । हल खींचने के लिए बैलों

का ही प्रयोग होता था परंतु आम तौर पर दो से अधिक बैलों को जोता जाता था । आठ बैलों तक भी पता चलता है । सिंचाई साधनों में भी उस समय ही विकास हुया । कच्चे कुँएं खोदने भी आर्यों ने ही आरंभ किए । प्रथम शताब्दी में जब कुशान वंश का राज्य था तो पक्के कुँएं बनाने की रीत पड़ी । गुप्त काल में कृषि यंत्रों में और भी सुधार हुआ । टैक्सला से 200 बी. सी. समय के कृषि संद मिले हैं, जो कि आज तक चालू खुर्पा, दात्री, कही, कुल्हाड़ी आदि बिल्कुल आज जैसे ही हैं । भारत कृषि-यंत्रों का केंद्र बन गया था और यहां से कृषि-यंत्र विदेशों को निर्यात किए जाते थे । दानों की पिसाई के ढंग का भी विकास हुआ । सिलबट्टे का स्थान चक्की ने ले लिया जो कि आज भी बहुत से घरों में चलती है ।

अठारहवीं सदी तक कृषि यंत्रों में कोई और सुधार नहीं हुआ । लकड़ी का हल और लकड़ी की ही पंजाली ज्यादा जगहों पर आज भी प्रयोग की जाती है । हल के मुन्ने में केवल लोहे का फाला ही होता था । लोहे का प्रयोग दात्री, खुरपा, कही आदि बनाने में ही होता था । अठारहवीं सदी में इंग्लैण्ड और यूरोप में औद्योगिक क्रांति आई जिस कारण कृषि-सुधार की ओर भी ध्यान दिया गया । उपज में वृद्धि हेतु किए यत्नों में कृषि-यंत्रों के सुधार की ओर भी ध्यान दिया गया । इंग्लैण्ड में बीज ड्रिल और घोड़ों से चलने वाली त्रिफाली का विकास हुआ । त्रिफाली से गोडी का काम सरल हो गया और बीज ड्रिल से बोआई अच्छे ढंग से होने लग पड़ी । उन्नीसवीं सदी में जब लोहे के उद्योग का विकास हुआ तो इंग्लैण्ड में बहुत से कृषि यंत्र बनाए गए जिन में से बोआई, कटाई व गहाई मशीनें, लोहे के हल और बीज ड्रिल मुख्य हैं । पठे जो हाथों के टोके से काटे जाते थे उनके लिए चारा काटने वाली मशीनें बन गई । इसी तरह पानी निकालने के लिए लोहे के हलट का आविष्कार हुआ । इनमें से बहुत से संद भारत में भी लाये गए । परंतु ये ज्यादा चल न सके । यह सभी यंत्र सरकारी फार्मों पर सिर्फ दर्शनीय बनकर ही रह गए । उस समय ही गेहूँ के भाव भी बहुत कम हो गए परंतु शक्कर के दाम अधिक थे ।

किसान गन्ना बोने की ओर अधिक आकर्षित हुए । गन्ने का रस निकालने के लिए मशीन चाहिए थी । गन्ना पीड़ने के लिए सबसे पहले लकड़ी के बेलने ही बनाए गए । सन् 1873 ई. में दो रोलरों वाला लोहे का बेलना बना जिस से गन्ने की पिड़ाई अच्छे ढंग से होने लगी । इसमें और सुधार करके तीन बेलने वाला बेलना लगाया गया, जिस से पिड़ाई और अच्छी तरह होने लग गई । पंजाब में नाहन के राजे शमशेर प्रकाश ने स्टील का कारखाना लगाने का यत्न किया पर कामयाब न हो सका परंतु उसने कमाद पीड़ने वाले बेलने बनाने शुरू कर दिए जो बहुत प्रसिद्ध हुए। आज भी नाहन सुलतान को अधिक प्रयोग में लाया जाता है । गन्ना उत्पादकों की आर्थिक दशा अन्य किसानों से अच्छी होने के कारण लोहे के बेलने को बहुत से गन्ना उत्पादकों ने काम में लाना आरंभ कर दिया ।

गन्ना पीड़ने वाले बेलनों के बाद दूसरी मशीन जो किसानों ने प्रयोग में लानी शुरू की – वह थी टोका मशीन । यह मशीन चारा काटने के काम आती है । इससे पहले चारा हाथ टोके से ही काटा जाता था । इस मशीन को चाहे मनुष्य द्वारा ही चलाया जाता था परंतु चारा काटने का काम इससे बहुत सरल व तेज हो गया । सबसे पहले यह मशीनें 1888 में इंग्लैण्ड से कानपुर फार्म के लिए मंगवायी गयी । आम किसानों में यह 1927 के पश्चात् ही प्रचलित हुई जब जालंधर में यह मशीनें बनने लगीं । इनकी सफलता देखकर कम समय में ही पंजाब के अन्य शहरों फिलौर, गोराया, बटाला, लायलपुर और उत्तरप्रदेश के शहरों कानपुर और इलाहाबाद में भी बनने लग गई । लोहे के प्रयोग में वृद्धि 1907 में जमशैदपुर (बिहार) में लोहे का कारखाना लगने से हुआ जिसको जमशेद टाटा के लड़कों ने स्थापित किया । इस से पहले भारत में लोहा नहीं बनता था । पर इस सदी के शुरू में (1907) जमशेदपुर में स्टील का कारखाना लगने के कारण देश में लोहा मिलने लग गया जिससे कृषि यंत्र देश में ही बनने शुरू हो गए ।

यूरोप और इंग्लैण्ड में कारखानों का मशीनीकरण होने से इसका

प्रभाव कृषि पर भी पड़ा । कृषि में मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा । जमीन की बहाई के लिए ट्रैक्टर बनाये गए जो वाष्पीकरण से चलते थे । इस सदी के आरंभ में कुछ ट्रैक्टर भारत में भी लाए गए । इनका प्रयोग सरकारी फार्मों या फिर कुछेक बड़े किसानों के खेतों में आरंभ किया गया । मशीनी खेती की लागत बैलों की खेती से अधिक थी । किसान पहले ही गरीब थे पर प्रथम विश्व युद्ध उपरांत किसानों की आर्थिक दशा और भी कमजोर हो गई । इसलिए खेती में मशीनों का प्रयोग न हो सका ।

भारतीय खेती में मशीनों का प्रयोग द्वितीय व्रिश्व युद्ध के पश्चात् ही आरंभ हुआ । देश की आजादी के समय सिर्फ 5000 ट्रैक्टर थे, जो 1960 में 50,000 हो गए । देश में ट्रैक्टरों का बनाया जाना 1961 में आरंभ हुआ और पहले वर्ष 880 ट्रैक्टर बनाए गए । घनी खेती और ज्यादा झाड़ देने वाली किस्मों के आने से ट्रैक्टरों की मांग में वृद्धि हुई और 1980 तक देश में 63,000 ट्रैक्टर प्रति वर्ष बनने शुरू हो गए । ट्रैक्टरों की कीमत अधिक होने के कारण सरकार की ओर से कम ब्याज दरों पर किसानों को ऋण देने का प्रबंध किया गया । इस प्रकार बहुत से किसानों ने ट्रैक्टर खरीदे । आंकड़े बताते हैं कि पंजाब में सबसे अधिक ट्रैक्टर हैं । हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान और गुजरात अन्य ऐसे प्रांत हैं जिन में अन्य प्रांतों से अधिक ट्रैक्टर हैं । इस जानकारी से यह भी पता चलता है कि जहां हरी क्रांति आई, उन्हीं क्षेत्रों में अधिक ट्रैक्टर हैं । इसका भाव यह हुआ कि खेती विकास ने ट्रैक्टरों की बिक्री में वृद्धि की और ट्रैक्टरों ने कृषि विकास को उत्साहित किया ।

यह आम तौर पर गलत धारणा है कि खेती में मशीनों के प्रयोग से बेरोजगारी में वृद्धि होती है बल्कि इसके विपरीत घनी खेती होने से रोज़गार के अधिक साधन बनते हैं । पंजाब और हरियाणा जहां खेती में सबसे अधिक मशीनों का प्रयोग होता है वहां कृषि मज़दूरों की कमी उत्तरप्रदेश और बिहार के मजदूर पूरी करते हैं । इस तरह कृषि विकास ने बहुत से लोगों को रोजगार दिया है । यह भी देखा गया है कि जो किसान

मशीनी खेती करते हैं उनकी फसल के झाड़ अन्य किसानों से अधिक हैं। इस प्रकार मशीनों के प्रयोग से ज़मीन की तैयारी अच्छी होती है, बोआई समय पर हो जाती है और अन्य कृषि जरूरतों की जैसे खाद, बीज, पानी, कीटनाशक-दवाएं आदि का भी सही प्रयोग हो जाता है।

मशीनों के प्रयोग से पशुओं पर निर्भरता कम हो जाती है। जो भूमि चारे के लिए प्रयोग की जाती है उसे अन्य फसलों की काश्त में लाया जा सकता है। पशु कम होने से दुधारू पशुओं की ओर अधिक ध्यान दिया जा सकता है जिससे दूध की पैदावार में वृद्धि होती है

खेती में मशीनों के प्रयोग से शिक्षित युवकों का कृषि की ओर रूझान हुआ है। ट्रैक्टरों से बंजर भूमि आबाद हो सकी इस प्रकार कृषि अधीन भूमि में भी वृद्धि हुई है।

कृषि यंत्रों के विकास संबंधी जान लेने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ मुख्य यंत्रों के संबंध में संक्षिप्त जानकारी दी जाए।

देसी हल

हल खेती का आधार है। हल के प्रयोग से ही संसार में कृषि आरंभ हुई। पहले पहल मनुष्य के पास लकड़ी ही उपलब्ध थी। इसी कारण आज तक लकड़ी का हल ही प्रयोग किया जाता रहा है। लोहे की खोज से इसमें एक लोहे का फाला जरूर लगा परंतु लकड़ी का हल आज भी प्रचलित है। इस हल के मुख्य भाग मुन्ना, चौ, फाला और हलस हैं। मुन्ने में चौ को ठोक दिया जाता है। चौ में फाला लोहे का लगाया जाता है जिसको उतार कर तीखा किया जा सकता है। मुन्ने में हलस होती है — जिसके द्वारा बैल हल को खींचते हैं। हाली के हल पकड़ने के लिए मुन्ने में हत्थी लगी होती है जिस से हलस को ऊपर नीचे किया जा सकता है। हल को पंजाली की सहायता से बैल खींचते हैं। हल का वह भाग जो पंजाली से जोड़ा जाता है, 'मुन्नी' कहलाता है। हल द्वारा खेती की जुताई की जाती है। जब हल जमीन की बहाई करता है तो हल की पंक्तियों

को राहलें कहा जाता है।

पंजाली

पंजाली की कृषि में बहुत महत्ता है। यह भी लकड़ी की ही बनी होती है। बैलों द्वारा किए जाने वाले प्रत्येक कार्य के लिए पंजाली की जरूरत पड़ती है। पंजाली की सहायता से दो बैलों को जोता जाता है। बैल, चाहे हल बाह रहे हों, हलट गेड़ रहे हों, फला या बेलन चला रहे हों, पंजाली की सहायता से ही जोड़े जाते हैं। पंजाली के ऊपर हिस्से को जो कि बैलों की गर्दन पर होता है जूला और नीचे वाली फटी को फट कहा जाता है। इन दोनों को दो मुट्ठियों की सहायता से मिलाया जाता है। जूले के आध को गुनिया कहते हैं। पंजाली को बैलों की गर्दनों में डालकर अरलों द्वारा बंद कर दिया जाता है। साधारण पंजाली की लंबाई कोई 5 फुट 3 इंच होती है। परंतु हलट तथा बेलने के लिए छोटी पंजालियों का प्रयोग किया जाता है। छोटी पंजाली की लंबाई 3 फुट 9 इंच होती है।

गड्डा

गड्डा खेती का दूसरा महत्वपूर्ण यंत्र है। पहिये के बनने से गड्डा बना। लगभग सभी किसानों के पास अपना गड्डा होता है। गड्डा खेती की फसल तथा अन्य वस्तुओं की दोआई के काम आता है। यह भी सारा लकड़ी का बना होता है। यहां तक कि पहिये भी लकड़ी के बने होते हैं। सवारी के काम आने वाले गड्डे का आकार छोटा होता है और इसमें बैठने के लिए स्थान बना होता है। इसको गाड़ी कहते हैं। गड्डा और गाड़ी को दो बैल खींचते हैं। गड्डा दो पहियों के ऊपर दो लम्बे शहतीर रखकर बनाया जाता है। शहतीरों के ऊपर फट्टीयां लगाकर सामान रखने की जगह बनाई जाती है। इसके आगे जूला होता है जहां पर बैलों को जोता जाता है। गड्डे को खड़ा रखने के लिए जूले के पास ऊठना लगा होता है। पहिये पिंजनियों के बीच चलते हैं। कई स्थानों पर गड्डे में रबड़ के टायरों वाले पहिये लगाकर इसमें सुधार किया गया है जिन के पास

ट्रैक्टर है, वह गड्डे के स्थान पर ट्राली का प्रयोग करते हैं ।

सुहागा

खेती में सुहागे की विशेष महत्ता है । खेतों में बहाई उपरांत उसको समान तल करने लिए सुहागा चलाया जाता है । फसलों को बीजने के उपरांत भी सुहागा फेर दिया जाता है । इस से बीज ढके जाते हैं । जमीन एक सार हो जाती है और सिंचाई करनी आसान हो जाती है । सुहागा एक शहतीर जिसका आकार 8 'x1 'x1/2' होता है, का बनाया जाता है । इस का भार एक किंवटल के आसपास होता है । हल्की जमीनों में से छोटा सुहागा जिसको सुहागी कहा जाता है, भी प्रयोग में लाई जाती है, सुहागी का आकार 6"x10"x15" होता है और इसका वजन कोई आधा क्विंटल होता है । सुहागे के बैलों की जोग को जोता जाता है । चालक सुहागे के ऊपर चढ़कर इसको चलाता है । यदि ज़मीन में दीमें अधिक हो तो व्यक्ति भी सुहागे पर चढ़ जाते हैं ।

लोहे का हल

आरंभिक हल में सुधार करके नया लोहे का हल बनाया गया है । इनमें राजा हल और हिन्दोस्तानी अधिक प्रसिद्ध हैं । इन हलों में लोहे का प्रयोग किया जाता है । लोहे के फाले इस ढंग से बनाए गए हैं कि वह मिट्टी को उखाड़ उसे उल्टा कर देते हैं । इस तरह नीचे वाली मिट्टी ऊपर आ जाती है ।

त्रिफाली

त्रिफाली गुड़ाई करने के काम आती है । इस का प्रयोग कपास की फसल में अधिक उपयोगी है । यह हल की तरह ही होती है । जब फसल लाईनों में बोई गई हो तो इसके द्वारा फसल सीलने का काम आसान और तेज़ी से हो सकता है । नये बोए खेत ऊपर यदि वर्षा पड़ जाए तो धरती करंडी जाती है । धरती की दोबारा वहाई करने की जगह त्रिफाली फेरना आसान

रहता है । इस तरह काम भी तिगुना हो जाता है ।

हाथ संद

खुरपा, दात्री, गंडासा (टोका), कही आदि रोज़ाना खेती के काम आने वाले हाथ संद हैं । खुरपा (रंबा) घास खोदने का काम करने या गुड़ाई करने के लिए प्रयोग किया जाता है । दात्री फसल की कटाई करने या चारा काटने के काम आती है । गंडासा (टोका) चारा कुतरने या कमाद काटने के लिए प्रयोग होता है । कही बांध बनाने, गहरी गुड़ाई करने, गड्ढे बनाने क्यारी बनाने के लिए काम आती है । यह संद प्रत्येक किसान के घर होते हैं । ज़रूरत पड़ने पर लुहार से इनको तीखा करा लिया जाता है ।

खेती मशीनें

भारत में मशीनों का प्रयोग आजादी के बाद अधिक हुआ है । खेती की कुछेक मुख्य मशीनें जिन का भारत में अधिक प्रयोग किया जाता है इस प्रकार हैं —

ट्रैक्टर

ट्रैक्टर के बनने से खेती का मशीनीकरण हुआ । जो काम पशुओं द्वारा किए जाते थे वह सभी ट्रैक्टर की मदद से होने लग गए । इस तरह खेतों में पशुओं की ज़रूरत खतम हो गई । ट्रैक्टर वहाई, ढोआई और कई वार सिंचाई के काम में भी प्रयोग किया जाता है । खेती से संबंधित लगभग सभी कामों के लिए ऐसे संद बन गए हैं जिन का प्रयोग ट्रैक्टरों से किया जा सकता है । ट्रैक्टर की कीमत अधिक होने के कारण सिर्फ वही किसान इसको खरीदते हैं जिन के पास खेती योग्य काफी भूमि होती है । ट्रैक्टर एक छोटे आकार की मशीन है जिस के अगले टायर छोटे और पीछे वाले काफी बड़े होते हैं । इसके ऊपर बैठने के लिए सिर्फ ड्राईवर के लिए ही जगह होती है । ट्रैक्टर छोटी और बड़ी शक्ति के मिलते हैं । ट्रैक्टर से चलने वाले सुहागा, बोआई ड्रिल, कटाई मशीन और गहाई मशीन बन

गई हैं । पानी निकासी पम्प को भी ट्रैक्टर से चलाया जाता है । इस का भाव यह है कि खेती से संबंधित सभी काम ट्रैक्टर की मदद से किए जा सकते हैं ।

भारत में ट्रैक्टर अधिक प्रचलित हरी क्रांति आने से ही हुए हैं । पहले पहले ट्रैक्टर विदेशों से ही आते थे परंतु 1961 में यह भारत में बनने लग गए । हरी क्रांति के आने से इनकी मांग में वृद्धि हुई । जिस से ट्रैक्टर बनाने वाले कारखानों में भी वृद्धि हुई । इनकी सहायता से धरती को अधिक अच्छी तरह प्रयोग किया जाने लगा । छोटे किसान स्वयं चाहे ट्रैक्टर खरीद नहीं सकते पर अपने पड़ोसी से किराये पर फसल की बोआई करवा सकते हैं । इस प्रकार उनको बैल रखने की जिम्मेदारी से छूट मिल गई । अब देश में 251200 (1997-98) ट्रैक्टर हैं ।

ट्यूबवैल (नलकूप)

सिंचाई खेती की जान है । कुएं और नहरें सिंचाई के मुख्य प्राप्ति स्थान हैं । नहरें दरियाओं के पानी को रोककर बनाई जाती है । इन नहरों का पानी किसानों को उन की भूमि मुताबिक समय मिथकर दिया जाता है । कुएं किसान के अपने होते हैं परंतु उन में से पानी निकालना कठिन काम है । पानी निकालने वाले इंजनों के बनने से सिंचाई सुविधाओं में काफी वृद्धि हुई है । भारत में द्वितीय विश्व युद्ध पश्चात् ही पानी के लिए इंजनों का प्रयोग शुरू हुआ । पानी निकालने वाला पम्प किसी कुएं में लगाया जा सकता है । या सीधे धरती में पाईपें दबाकर पानी निकाला जा सकता है । पानी निकालने वाला पम्प इंजन से चलता है । आजकल अधिकतर गांवों में बिजली आ जाने से पम्प बिजली मोटर द्वारा चलते हैं । बिजली से मोटर का पम्प चलाना आसान और सस्ता पड़ता है । भारत में किरलोस्कर कम्पनी ऐसे पम्पों के बनाने में आगे है । बहुत से किसानों ने अपने पम्प लगा लिए हैं इनको बम्बी कहते हैं । बम्बी लगने से ग्रामीण जीवन में तेजी से परिवर्तन आया और कई किसानों ने तो बम्बी पर ही घर बनाकर रहना शुरू कर दिया । उनके पास पानी काफी हो गया

जिसको वह अपनी इच्छानुसार काम में ला सकते हैं।



थ्रैशर ने गेहूँ की सारी गहाई मशीन द्वारा कर दी है

गहाई मशीनें

फसल की गहाई बहुत कठिन काम हैं। गेहूँ में तो और भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। गेहूँ की गहाई ज्येष्ठ मास की भरी गर्मी में फलों की मदद से की जाती थी। लकड़ी के फ्रेम में काँटों वाली वृक्षों की टहनियों को पाकर बनाया जाता था। बैलों की जोड़ी की सहायता से इस फले को काटी हुई गेहूँ के ऊपर एक चक्र के आकार में घुमाया जाता

था। बैलों के पैरों और फले से जब काफ़ी लाहन बारीक और छोटा हो जाता था तो हवा की मदद से धूलि को उड़ाकर दाने तथा तूड़ी निखेड़ लिए जाते थे। यह बड़ा मुश्किल काम था। हरी क्रांति के आने से गेहूँ की पैदावार में बहुत वृद्धि हुई। ऐसी अधिक फसल की गहाई बैलों से बड़ी मुश्किल थी। सबसे पहले इंग्लैण्ड से 1907 में थ्रैशर मंगाए गए जिन का बिहार में अंग्रेजों ने अपने फार्मों में प्रयोग किया। वाष्पीकरण द्वारा चलने वाले थ्रैशर का पंजाब के शहर लायल पुर में 1912 में प्रदर्शन हुआ और कानपुर फार्म पर यह 1923 में आए। भारत में यह मशीनें प्रचलित न हो सकीं। आजादी पश्चात् इस ओर विशेष ध्यान दिया गया और 1958 में लुधियाना थ्रैशर के नाम से लुधियाना में पहला थ्रैशर बना। इसमें कुछ सुधार करके पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों की सहायता से 1965 में लुधियाना में ही शेरपुर थ्रैशर बना जो काफी सफल हुआ। इस मशीन को और सरल बनाकर 1969 में टोका थ्रैशर बनाया गया। अब देश में गेहूँ की लगभग सारी गहाई मशीनों द्वारा होती है। गहाई के साथ ही गेहूँ की कटाई की भी मुख्य समस्या थी। इस ज़रूरत को मुख्य मानकर 1970 में विदेशों से कम्बाइन मशीनें मंगवाई गई। भारत में पहली कम्बाइन पंजाब में 'स्वराज' के नाम से 1980 में बनी। अब कई कम्पनियां इस मशीन को बना रही हैं। इस मशीन से तूड़ी नहीं बन सकती थी। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों ने एक सिर्फ कटाई की ही मशीन बनाई है। पंजाब में साधारण कारीगरों ने इन मशीनों में सुविधा अनुसार सुधार कर स्थानीय स्तर पर ही यह सभी मशीनें बनानी शुरू कर दी हैं। इस तरह इन के प्रयोग और विक्री में तेजी से वृद्धि हुई। गहाई की मशीनों और सिंचाई के पम्पों ने खेती के काम को आसान कर दिया है। अब काम अच्छा और तीव्र गति से होता है। खेती में मशीनों के प्रयोग से पैदावार में काफी वृद्धि हुई। इसी कारण हमारा देश आत्म-निर्भर हो सका है।

3

मुख्य फसलें

संसार में बोई जाने वाली फसलों को दो भागों में बांटा जा सकता है । सर्दियों में बोई जाने वाली फसलें और गर्मियों में बोई जाने वाली फसलें । इन दो फसली मौसमों को आसाढ़ी और सावनी कहा जाता है । आसाढ़ी की फसलों की बोआई सर्दी के आरंभ होते ही की जाती है और सर्दी खतम होते ही कटाई कर दी जाती है । गर्मियों की फसलें गर्मी के मौसम में बोई जाती है और गर्मी कम होते ही उनको काट लिया जाता है । सर्दी की फसलें पकने में अधिक समय लेती हैं और गर्मी की फसलें पकने में कम समय लेती हैं । सर्दी के मौसम की मुख्य फसलें गेहूँ, चना, जौ, सरसों आदि हैं – जबकि गर्मी की फसलों में धान, मक्की, कपास, मूंगफली, माह, मूंग आदि हैं । गन्ना पूरे वर्ष की फसल है । फसलों को उनके प्रयोग के अनुसार ही वर्ग विभाजन किया जा सकता है जैसे कि : 1.अनाज की फसलें,2. व्यापारिक फसलें,3. दालें,4. तेल-बीज,5. चारे की फसलें.

1. अनाज की फसलें

अनाज की फसलें वह होती हैं जिन के दाने आदमी के भोजन का मुख्य अंग हैं । संसार में धान और गेहूँ मुख्य अनाज की फसलें हैं । सारी दुनिया का भोजन इन दोनों फसलों पर निर्भर करता है । बाजरा, मक्की, चरी (ज्वार), जौ और कुछ अन्य फसलें हैं जिन के दाने कुछ सीमा तक मानवी भोजन के लिए काम आते हैं ।

भोजन मनुष्य की सबसे प्रथम ज़रूरत है । किसी भी देश के विकास

या खुशहाली की पहली निशानी जनता की खाद्य-स्थिति है । जब देश आजाद हुआ तो अनाज का अभाव था । हमें विदेशों से अनाज आयात करना पड़ता था, जिसको मोल लेने के लिए देश के पास पैसे भी नहीं थे । अमेरिका की ओर से एक समझौते अनुसार (पी. एल. 480) यह अनाज भेजा जाता था और उस की ओर से कुछ शर्तें मनवाई जाती थी । देश चाहे राजनैतिक रूप में स्वतंत्र हो गया था । पर आर्थिक रूप में एक तरह से अमेरिका की पराधीनता ही थी । कई यत्न करने पर भी आजादी के पहले आरंभिक दिनों में अन्न की उपज में उस तेजी से वृद्धि न हो सकी, जिस तीव्रता से जनसंख्या में वृद्धि हो रही थी । इस प्रकार प्रत्येक वर्ष विदेशी अन्न की मात्रा में वृद्धि होती गई । हमारे देश ने 1950 में 22 लाख टन अनाज विदेशों से आयात किया जो कि बढ़कर 1966 में 103 लाख टन हो गया । अंतर्राष्ट्रीय शोध केंद्र मैक्सिको में उसी वर्ष गेहूँ की एक ऐसी किस्म तैयार हुई जिसकी पैदावार पहले की सभी किस्मों से अधिक थी । सरकार की अच्छी योजनाओं के कारण मैक्सिकन गेहूँ का बीज काफी मात्रा में आयात किया गया और किसानों को उसके प्रयोग के लिए प्रेरित किया गया । हमारे वैज्ञानिकों ने उस गेहूँ में सुधार करके पहली किस्म पी. बी. 18 और दूसरी किस्म कल्याण सोना निकाली । इन किस्मों के आने से गेहूँ की उपज में तेजी से वृद्धि हुई । उसी समय ही अन्तर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान केंद्र मनीला में भी अधिक उपज देने वाली किस्में तैयार हो गई और भारत में वहां से आई. आर-8 ने उपज में बहुत वृद्धि की । धान की किस्मों में भी सुधार करके हमारे वैज्ञानिकों ने भारतीय ज़रूरतों के मुताबिक नई किस्में विकसित की । मक्की और बाजरे में दोगली किस्मों द्वारा उपज में वृद्धि की गई । खाद्य-फसलों की उपज में हुई वृद्धि से 1970 में हमारा देश अन्न के विषय में आत्म निर्भर हो गया और उसी वर्ष विदेशों से अनाज का आयात बंद हो गया । देश में 1950 में सिर्फ 5 करोड़ टन अनाज पैदा होता था । जोकि 1970 में 11 करोड़ टन हो गया । अब देश में 19 करोड़ टन अनाज (1997-98) पैदा

होता है । परंतु हमारी जनसंख्या में जिस तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही है उस मुताबिक अगले दशक में हमें 24 करोड़ टन अनाज की ज़रूरत होगी । इसलिए हमें अनाज की उपज में वृद्धि के लिए विशेष यत्न करने होंगे और साथ ही जनसंख्या में हो रही वृद्धि को कम करना पड़ेगा । कुछ मुख्य खाद्य फसलें इस प्रकार हैं :

गेहूँ

गेहूँ कृषि की मुख्य फसल है । यह दुनिया की लगभग आधी जनसंख्या का भोजन है । गेहूँ की बोआई (अक्टूबर-नवम्बर) दो महीने की जाती है और इसकी कटाई बैसाख (अप्रैल) में की जाती है । गेहूँ उत्तरी भारत के मैदानों की मुख्य फसल है । इसके पक जाने की खुशी में बैसाखी का त्योहार मनाया जाता है । जिन स्थानों पर सर्दी का मौसम अधिक समय तक रहता है वहां इसके पकने में कुछ अधिक समय लगता है । गेहूँ की फसल हरे रंग की होती है । परंतु पक जाने पर इस का रंग सुनहरी हो जाता है । पकी हुई फसल ऐसे लगती है – जैसे किसी ने खेतों में सोना बिखरा दिया हो । इसके दाने सिट्टों में होते हैं । फसल की गहाई करके दाने निकाल लिए जाते हैं । तूड़ी (चारा) पशुओं के खाने के लिए काम आती है । गेहूँ के दानों को पीसकर आटा बनाया जाता है । इस से विभिन्न देशों के रिवाज अनुसार रोटी बना कर खाई जाती है । वैज्ञानिकों ने सख्त मेहनत द्वारा गेहूँ की ऐसी किस्में विकसित की हैं, जिस की उपज अधिक और कद छोटा होता है । गेहूँ ऐसी फसल है जिस की खेती से दुनिया में खेती का आरंभ हुआ । विश्व में सबसे पहले गेहूँ की खेती मैसोपोटेमिया (इराक) में आरंभ हुई मानी जाती है । भारत में इसकी खेती तकरीबन 26 करोड़ हैकटेयर रकबे में होती है । इसकी वार्षिक उपज (1997-98) 7 करोड़ टन है ।

जौ

जौओं की खेती भी संसार में गेहूँ के साथ ही आरंभ हुई । इस फसल का

घर भी मैसोपोटेमिया (इराक) को ही माना जाता है। जौओं की खेती के लिए भी गेहूँ जैसा ही जलवायु चाहिए और इनकी खेती भी वहां ही होंती है जहां गेहूँ की खेती होती है। जौओं को आमतौर पर कम उपजाऊ और बारानी भूमि में बोया जाता है। जौओं के दानों को भूनकर उन का आटा बनाया जाता है और इस आटे को पानी में घोल कर पी लिया जाता है। इसको "सत्तू" कहते है। जौओं का अधिक प्रयोग पशु-भोजन के रूप में या कारखानों में होता है। जौ बियर बनाने का मुख्य साधन है।

धान

धान दुनिया की सबसे अधिक खेती की अनाजी फसल है। चावल और गेहूँ मानवीय भोजन का मुख्य अंग हैं। यह माना जाता है कि धान की फसल भारत, बर्मा, हिन्दचीनी में आरंभ हुई। अन्य किसी भी खुराकी-फसल के मुकाबले धान की उपज अधिक है। यह कम समय में तैयार होने वाली फसल है और एक वर्ष में इसकी कई फसलें प्राप्त की जा सकती है। इसलिए जहां भी धान की खेती आरंभ हुई वहाँ ही जनसंख्या में वृद्धि हुई। भारत में धान के नीचे 4.5 करोड़ हैक्टेयर भूमि है और इसकी उपज 8 करोड़ टन (1997-98) के लगभग है। अन्तर्राष्ट्रीय धान खोज केंद्र मनीला से 1967 में अधिक झाड़ देने वाली किस्मों के आने से इसकी उपज में बहुत तेजी से वृद्धि हुई। यह फसल कम समय की होने से अन्य फसलों की निसबत अधिक लाभकारी बन गई। धान के नीचे रकबे और पैदावार में वृद्धि कारण चौल की उपज जो 1966 में तीन करोड़ टन थी, 1976 में बढ़ कर 6 करोड़ टन हो गई।

सबसे पहली अधिक उपज देने वाली किस्म आई-आर-8 थी। इस समय भारत का धान की पैदावार में दूसरा स्थान है और जहां 20 प्रतिशत विश्व की उपज होती है। पंजाब और हरियाणा जहां पहले धान की खेती नहीं होती थी नयी किस्मों के आने से धान के मुख्य उत्पादक बन गए हैं।

भारत में धान संबंधी सबसे पुराना विवरण 2300 बी.सी. का लोथल



आई. आर.-8 किस्म ने धान की उपज में कई गुणा वृद्धि की।

से मिलता है। धान गर्मियों की फसल है परंतु जहां मौसम गर्म ही रहता है और सर्दी होती ही नहीं, वहां एक वर्ष में तीन फसलें भी ली जाती हैं। नई अधिक झाड़ देने वाली किस्मों से इसकी पैदावार में बहुत वृद्धि हुई है। पंजाब में भी धान सौणी की मुख्य फसल बन गई है। धान की हमारे जीवन में बहुत महत्ता है। विश्व की आधी से अधिक जनसंख्या का चावल मुख्य भोजन हैं। हमारे देश में चावल की धार्मिक महत्ता है। बहुत सी धार्मिक रस्मों के समय चावलों का प्रयोग होता है। चावलों का दान, पुण्य-कार्य समझा जाता है।

मक्की

मक्की सौणी की एक और मुख्य फसल है । धान की अधिक उपज देने वाली किस्मों के आने से पहले उत्तरी भारत में मक्की ही सौणी की मुख्य फसल थी । मक्की की खेती सबसे पहले मैक्सिको में आरंभ हुई मानी जाती है । यूरोपीय लोग जब अमेरीकी उप-महाद्वीप में गए तो उन के द्वारा मक्की की खेती संसार के अन्य देशों में फैल गई । भारत में मक्की पुर्तगाली लेकर आए । धीरे धीरे इसकी खेती सारे भारत में होने लगी । पंजाब में सर्दी के दिनों में मक्की की रोटी सरसों के साग के साथ बड़े चाव से खाई जाती है । मक्की का रोटी के रूप में तो कम ही प्रयोग होता है परंतु इसको कारखानों में अन्य कई पदार्थ बनाने के लिए अधिक काम में लाया जाता है । मक्की जम्मू, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, बिहार, असम और कर्नाटक में मुख्य फसल है । सारे देश में इसके अधीन कोई 63 लाख हैक्टेयर भूमि है और इसकी पैदावार (1997-98) 108 लाख टन है । अधिक उपज देने वाली किस्में आने से पिछले दो दशकों में मक्की की उपज में 25 प्रतिशत वृद्धि हुई है । मक्की में दोगली और कम्पोज़िट किस्में तैयार की गई हैं । वैज्ञानिकों ने सर्दी की मक्की की खेती संबंधी सिफारिशें ढूंढ़ ली हैं । अब देश के दक्षिणी प्रांतों, बिहार और पंजाब में इसकी खेती होती है । सर्दियों की मक्की की उपज गर्मी की फसल से काफ़ी अधिक होती है ।

ज्वार

ज्वार या चरी सौणी की एक और मुख्य फसल है । पंजाब में इसकी खेती चारे के लिए होती है जबकि मध्यप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र आदि प्रांतों में इसकी काश्त दानों के लिए भी होती है । यह मक्की से सख्त पौधा है इसलिए हल्की और बारानी भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है । खुशक क्षेत्रों में ज्वार की खेती अनाजी फसलों के रूप में होती है और लोग इसकी रोटी खाते हैं । अफ्रीका को ज्वार का घर माना जाता है । आज से कोई 7 हज़ार वर्ष पहले पूर्वी अफ्रीका में इसकी खेती आरंभ

हुई । भारत में इसका पुराना विवरण राजस्थान और महाराष्ट्र में मिला है ।

बाजरा

ज्वार की तरह बाजरा एक और सौणी की फसल है जिसको कुछ जगहों पर चारे के लिए और कुछ स्थानों पर दानों के लिए बोया जाता है । इसकी खेती अधिकतर रेतीले इलाकों में होती है । राजस्थान और महाराष्ट्र में इसकी खेती अनाजी फसल के रूप में होती है और यह लोगों के भोजन का अंग भी है । ज्वार की तरह अफ्रीका को ही बाजरे का घर माना जाता है । अफ्रीका से मिस्त्र द्वारा इसके भारत आने की संभावना मानी जाती है । भारत में बाजरे संबंधी सबसे पुरानी जानकारी 3000 वर्ष पुरानी रंगपुर (गुजरात) से मिलती है । चाहे बाजरा भारत में काफ़ी समय पहले पहुँच गया था । परंतु इसकी उच्च स्तरीय खेती जनसंख्या वृद्धि के साथ आरंभ हुई, जब कम उपजाऊ, बारानी और बंजर भूमि को खेती अधीन लाया गया जो ज्यादातर हिमालय के प्रांतों में, राजस्थान और उत्तरप्रदेश में होती है । सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि से बाजरे अधीन रकबे में कमी हुई है । वैज्ञानिकों की ओर से अधिक उपज देने वाली किस्मों से इसकी पैदावार में काफी वृद्धि हुई है ।

दालें

भारत में दालें मानवीय भोजन का अटूट अंग हैं । यह प्रोटीन युक्त होती हैं जिन की मनुष्य के शरीर को अत्यंत आवश्यकता है । दालें भूमि की उपजाऊ शक्ति को भी बनाए रखती हैं क्योंकि इनमें वायुमण्डल से नाईट्रोजन को प्राप्त कर भूमि में भेजने की क्षमता होती है । हमारा देश दालों की पैदावार में मुख्य है । यहां लगभग ढाई करोड़ हैक्टेयर भूमि पर दालों की खेती होती है और वर्ष 1994-95 में दालों की उपज कोई डेढ़ करोड़ टन हुई थी । दालों की खेती आमतौर पर बारानी भूमि पर की जाती है कठिनाई से 10 प्रतिशत क्षेत्र में दालों की भूमि में ही सिंचाई

सुविधाएं प्राप्त हैं । इसी कारण इनकी प्रति हैक्टेयर उपज कम है । भारतीय लोगों के भोजन का अटूट अंग होने के कारण केंद्रीय सरकार की ओर से दालों की उपज में वृद्धि के लिए विशेष यत्न किए गए हैं जिन में काफ़ी सफलता प्राप्त हुई है । परंतु खेद की बात यह है कि जिस तेजी से आबादी में वृद्धि हुई है उस तेज़ी से दालों की उपज में वृद्धि नहीं हुई, जिस कारण दालों की प्रति व्यक्ति प्राप्ति कम हो गई है । यह बहुत चिंता की बात है क्योंकि दालें संतुलित भोजन का आधार हैं । इसी कमी के कारण हमारी आबादी के ज्यादा भाग को आवश्यकतानुसार भोजन नहीं मिल रहा है । खेती की जाने वाली कुछ मुख्य दालों का विवरण इस प्रकार है :

अरहर

अरहर के पौधे बड़े होते हैं इस कारण इसकी छिट्टीयां बालण (ईंधन) के काम भी आती हैं । भारत की ज्यादा आबादी इस दाल की शौकीन है । इसके नीचे केंद्रीय और दक्षिणी भारत में ज्यादा रकबा है । वैज्ञानिकों ने अरहर की अधिक उपज देने वाली किस्मों को तैयार करके इसकी पैदावार में वृद्धि की है । इसमें कुछ दोगली किस्में भी बनाई गई हैं । पिछले 25 वर्षों में अरहर के नीचे रकबा 27 लाख हैक्टेयर से बढ़कर 35 लाख हैक्टेयर हो गया है और इसी समय में पैदावार 19 लाख टन से बढ़कर 27 लाख टन हो गई है । अरहर की पैदावार में वृद्धि की बहुत सी संभावनाएं हैं । यदि अधिक उपज देने वाली किस्मों की विशेषज्ञों अनुसार खेती की जाए तो इसकी उपज में बड़ी सरलता से वृद्धि हो सकती है । कुल दालों के नीचे रकबे का 15 प्रतिशत अरहर के नीचे है । भारत में अरहर ज़ंजीबार से आई परंतु अब भारत इसका मुख्य केंद्र बन गया है क्योंकि विश्व की 85 प्रतिशत अरहर भारत में होती है ।

चना

चना भी खेती की जाने वाली प्रारंभिक दाल की फसलों में से एक हैं ।

चनों की लगभग 35 जंगली किस्में मिलती हैं जो कि यूनान, इथोपिया, मोराको, ईरान, मैक्सिको, पीरू और चिल्ली आदि देशों में मिली हैं। तुर्की और सीरिया में छोलों की खेती के सात हजार वर्ष पुराने प्रमाण मिले हैं। चने आषाढ़ की मुख्य दाल है। मनुष्य के भोजन के अलावा चने पशुओं के भोजन का भी मुख्य भाग है। चनों को सब्जी के रूप में खाने के अतिरिक्त इनके आटे के कई पदार्थ बनते हैं। दानों को भूनकर भी खाया जाता है। चनों की खेती भी कम उपजाऊ और बारानी भूमि में की जाती है जहां कि गेहूँ की अच्छी उपज प्राप्त नहीं की जा सकती। यह दालों में सब से महत्वपूर्ण है। इस समय देश में चने कोई 73 लाख हैक्टेयर भूमि पर बोए जाते हैं और वार्षिक पैदावार (1994-95) 92 लाख टन है। चने के नीचे सारी दालों के मुकाबले अधिक रकबा है और यह हिस्सा कोई 30 प्रतिशत बनता है।

मसूर

मसूर आषाढ़ में खेती की जाने वाली एक और दाल है। इसकी खेती भी आम तौर पर बारानी स्थितियों में की जाती है। मसूर की खेती का आरंभ भारत और अफगानिस्तान में हुआ माना जाता है। यहां से ही वह एशिया और यूरोप के अन्य देशों में पहुँचे। कई इतिहासकार यूनान को मसूरों का घर मानते हैं। मसूरों में अन्य दालों की तरह प्रोटीन भी होते हैं और इसकी जड़ें भूमि की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि करती हैं। मसूरों की भारत में धार्मिक महत्ता भी है जिस कारण इनका प्रयोग श्राद्धों में किया जाता है। भारत में दुनिया के अन्य देशों से अधिक रकबे में मसूरों की खेती होती है और उपज भी यहां ही अधिक है। उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार में सबसे अधिक खेती होती है। भारत में मसूरों के अधीन लगभग 1100 हजार हैक्टेयर रकबा है और इनकी वार्षिक पैदावार 710000 टन होती है।

माह और मूंगी

माह और मूंगी सौणी की दो मुख्य दालें हैं। भारत में ज्यादातर लोग

मांसाहारी नहीं हैं। इसी कारण भारतीय भोजन में दालों की विशेष महत्ता है। माहों की भोजन में महत्ता को देखते हुए इसकी धार्मिक महत्ता बन गई है। इनके संबंध में वेदों में भी लिखा मिलता है। किसी भी शुभ समय पर माँहों की दाल बनाना शगुन माना जाता है। इन दोनों दालों की बोआई आषाढ़ महीने में की जाती है और अक्टूबर (आश्विन) में फसल पक कर तैयार हो जाती है। भारत को ही इन दालों का घर माना जाता है। यहां से ही इनके बीज बलोचिस्तान, ईरान और रूस आदि में गए। भारत में इनके संबंध में विवरण नवदातोली में आज से कोई 3500 वर्ष पुराना मिला है। देश में मूंगी के नीचे कोई 33 लाख हक्टेयर है जबकि पैदावार 13 लाख टन है। मूंगी नीचे महाराष्ट्र, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश में सबसे अधिक रकबा है। माह कोई 25 लाख हैक्टेयर भूमि पर बोए जाते हैं और इनकी वार्षिक उपज कोई 12 लाख टन है। मध्यप्रदेश में सबसे अधिक रकबा माहों के नीचे है। उड़ीसा और आंध्रप्रदेश का दूसरा और तृतीय स्थान है।

तेल बीज

वनस्पति तेल भारतीय भोजन का अटूट अंग है। इसी कारण अनाजी फसलों उपरांत देश में तेल बीजों का दूसरा स्थान है। इनकी खेती नीचे 13 प्रतिशत रकबा आता है और पूरी खेती उपज का यह 10 प्रतिशत हैं। भारत में मूंगफली, सरसों, सूर्यमुखी, तिलहन, सोयाबीन आदि मुख्य तेल बीज हैं। पिछले वर्ष (1997-98) तेल बीजों के नीचे ढाई करोड़ हैक्टेयर से कुछ अधिक रकबा था और देश में 220 लाख टन तेल बीजों का उत्पादन हुआ। देश में तेल बीजों की कमी थी और करोड़ों रुपयों का तेल विदेशों से मंगवाना पड़ता था। तेल बीजों की पैदावार में वृद्धि के लिए विशेष यत्न किए गए जहां खोज कार्य तेज किया गया वहां भारत सरकार की ओर से एक विशेष तेल बीज़ मिशन शुरू किया गया ताकि देश तेल बीजों में आत्म निर्भर हो सके। यदि 1970 के समय की उपज से मुकाबला करें तब तेल बीजों के नीचे रकबे में 52 प्रतिशत और उपज

में 115% वृद्धि हुई । वैज्ञानिकों ने अधिक उपज देने वाली किस्में और कई फसलों में दोगली किस्में विकसित की जिन्होंने उपज में वृद्धि की और किसानों की इनकी खेती में रूचि बढ़ी । दस वर्ष पहले हमारा देश कोई 1000 करोड़ रुपए के तेल बाहर से आयात करता था । आज हम आत्म निर्भर हो गए हैं, पिछले वर्ष 2000 करोड़ रुपए की तेल बाहर निर्यात किया गया । मुख्य तेल बीज फसलों का विवरण इस प्रकार हैं:

सूर्यमुखी

सूर्यमुखी हमारे देश में व्यापारिक तौर पर खेती की नई फसल है । इसकी सर्वप्रथम उच्च स्तर पर खेती 1969 में रूस में बीज मंगवाकर आरंभ की गई । पहले पहल यह दक्षिणी राज्यों कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में ही सफल हुई परंतु पिछले कुछ वर्षो से उत्तरी भारत विशेषत: पंजाब और हरियाणा में बहुत किसान इसकी खेती करने लग गए हैं । अमेरिका को इसका घर माना जाता है । भारत में सबसे पहले 1915 में बम्बई राज्य में इसकी खेती का यत्न किया गया जो सफल न हो सका । भारत के कृषि वैज्ञानिकों की मेहनत से अब यह फसल सफलता से पैदा की जा रही है और इसके नीचे रकबे में तेजी से वृद्धि हो रही है । इस समय भारत में सूर्यमुखी नीचे 230 लाख हैक्टेयर रकबा है और कुल उपज 1500000 मीट्रिक टन है । अब तक भी अन्य देशों के मुकाबले भारत में उपज कम है । इसमें वृद्धि करने के यत्न चल रहे हैं । इसके पौधे एक से डेढ़ मीटर ऊंचे हो जाते हैं और शिखर पर फूल खिलते हैं । यह बड़े आकार के पीले फूल देखने को सुन्दर लगते हैं और आमतौर पर सूर्य की तरफ झुकते हैं । सूर्यमुखी ऊपर दिन की लंबाई का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । इसकारण यह सारा वर्ष उगाया जा सकता है और कई प्रकार के जलवायु में हो जाता है । यह कुहरे को सहन नहीं कर सकता और पकने में कोई चार महीने का समय लेता है । सूर्यमुखी का तेल बढ़िया किस्म का गिना जाता है । पौधे के लगभग सारे हिस्से ही किसी न किसी काम आ जाते हैं ।

सरसों

सरसों सर्दियों के मौसम की मुख्य तेल बीज फसल है । यह सारे एशिया में ही जंगली बूटी के रूप में उगती है । उत्तरी अफगानिस्तान और साथ लगने वाले भारतीय इलाके (अब पाकिस्तान) को इसका घर माना जाता है । इसी कारण शायद सरसों का पंजाबी सभ्याचार में विशेष स्थान है । वसंत ऋतु में सरसों के पीले फूल खेतों में ऐसे लगते हैं जैसे धरती पर सोना बिखरा हो । सरसों के फूलों को सुन्दरता का चिह्न माना जाता है । सरसों के कोमल पौधों की गंदलों का साग पंजाबी भोजन का एक विशेष अंग है । सरसों का तेल खाना बनाने, तलने और मालिश आदि के लिए प्रयोग किया जाता है । सरसों परिवार के नीचे भारत में कोई 62 लाख हैक्टेयर भूमि है और इसकी उपज 60 लाख टन है । वैज्ञानिकों की ओर से अधिक पैदावार और बढ़िया तेल देने वाली किस्में बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है । इसमें दोगली किस्में भी बन गई हैं ।

अलसी

अलसी आषाढ़ के तेल बीजों की और एक फसल है । जहां सरसों के फूल पीले होते हैं – वहां अलसी के फूल बैंगनी होते हैं और बहुत सुन्दर लगते हैं । अलसी और अलसी का तेल मानवीय भोजन का एक विशेष अंग है । अलसी के पुराने दाने मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र में मिले हैं । अब अलसी आम तौर पर उत्तरी और पश्चिमी भारत में अधिक बोई जाती है ।

तिलहन

शायद ही कोई ऐसा बच्चा होगा जिसको रेवड़ियाँ खाने का शौक न हो और रेवड़ियां तिलों के बिना बन नहीं सकतीं । तिल सौणी की एक महत्वपूर्ण तेल बीज फसल है । तिलहनों के नीचे रकबा बहुत कम है परंतु सर्दियों में इनका प्रयोग हर घर में होता है । भारत में तिलों की खेती कदीम से होती है । सिन्धु घाटी की सभ्यता समय भी तिलों का प्रयोग

किया जाता था अफ्रीका को तिलहनों का घर माना जाता है । भारत में तिल या तो सीधे अफ्रीका से पहुँचे या फिर मैसोपोटेमिया द्वारा आए होंगे । तिलहनों की बोआई आषाढ़ और श्रावण के महीने में की जाती है । अकेली फसल तो कम ही बोई जाती है । आम तौर पर माह या मूंगी की फसल में तिलहनों के सियाड़ लगा दिए जाते हैं । तिलहनों की बोआई आम तौर पर बारानी में होती है ।

मूंगफली

मूंगफली सौणी के तेल बीजों की मुख्य फसल है । आजतक खाने वाले तेल का मुख्य आधार मूंगफली ही रही है । परंतु इसकी मांग बढ़ जाने से सूर्यमुखी आदि के तेल का प्रयोग भी शुरू किया गया है । मूंगफली को तो सभी वैसे भी चाव से खाते हैं । कई जगहों पर तो इसका बादामों की संज्ञा दी जाती है और भूनी हुई मूंगफली सर्दियों में विशेष महत्व रखती है । मूंगफली का घर अमेरिकन महाद्वीप है । भारत में इसको सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगाली लेकर आए । इसकी खेती रेतीले इलाकों में होती है जिनमें राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश मुख्य हैं । पंजाब में मूंगफली की खेती इस सदी में शुरू हुई । इसकी खेती ज्यादा जगह बरानी होने के कारण बोआई वर्षा ऋतु की पहली वर्षा होने से होती है । यदि वर्षा ठीक होती रहे तो फसल अच्छी उपज देती है । मूंगफली की गट्ठियां जड़ों में लगती हैं । फसल अक्टूबर में तैयार हो जाती है । मूंगफली भारत में तेल बीजों की एक महत्वपूर्ण फसल है । इसके नीचे कोई 80 लाख हैक्टेयर भूमि है और वार्षिक उपज 84 लाख टन है । देश के कुल तेल बीजों का यह कोई 39 प्रतिशत है ।

रोकड़ी फसलें

रोकड़ी फसलें वह होती हैं जिनकी खेती किसान आम तौर पर मण्डी में बेचने के लिए करता है ताकि धन कमा सके । कपास, गन्ना, आलू, पटसन, सोयाबीन आदि को रोकड़ी फसलों में गिना जा सकता है । यह फसलें

सिर्फ किसान की आय में बढ़ोत्तरी के लिए ही आवश्यक नहीं बल्कि इनका देश की आर्थिक दशा के लिए भी विशेष स्थान है। यूं तो यह मनुष्य की आरंभिक ज़रूरतों जिनमें वस्त्र, शक्कर, भोजन आदि आते हैं को पूरा करने में बहुत मदद करती हैं। सरकार की ओर से इनकी उपज में वृद्धि के लिए विशेष यत्न किए गए हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की ओर से इन फसलों संबंधी खोज हेतु विशेष फसल खोज संस्थाएं बनाई गई हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय सहयोगी खोज प्रोजेक्ट भी शुरू किए गए हैं। इस खोज से अधिक पैदावार देने वाली किस्में तैयार हुई और साथ ही उनकी खेती हेतु सुधरे ढंग ढूंढ़े गए। नई तकनीकों को किसानों तक पहुंचाने हेतु केंद्रीय और राज्य सरकारों की ओर से विशेष यत्न किए गए। इन यत्नों से पिछले पचास वर्षों में इनकी उपज में कई गुणा वृद्धि हुई है। यह ऐसी फसलें हैं जिनके ऊपर आधारित कारखाने लगाने की ज़रूरत पड़ती है। देश में बहुत सी चीनी मिलें, कताई और कपड़ा कारखाने, तेल फैक्ट्रीज़ लगाई गई। इनसे न सिर्फ किसानों को उनकी उपज का उचित दाम मिल सका बल्कि बहुत से लोगों को रोज़गार के साधन बन गए। भारत की कुछ मुख्य रोकड़ी फसलों संबंधी संक्षेप जानकारी नीचे दी जा रही है :–

गन्ना

चीनी और शक्कर हमारे भोजन का अभिन्न अंग हैं। भारत में यह वस्तुएं गन्ने से बनाई जाती हैं। इसी कारण भारत की मुख्य फसल गन्ना है। यह गर्म और तर इलाकों में अधिक होता है। गन्ने की बोआई मौसम गर्म होते ही मार्च महीने आरंभ कर दी जाती है। परंतु इसकी कटाई वर्षा के दिनों में ही अधिक होती है। गन्ना सारे साल की ही फसल है और दशहरे उपरांत पककर तैयार हो जाती है। परंतु इसकी कटाई मार्च तक होती रहती है। गन्ने के ठीक घर का पता लगाना कठिन है पर यह समझा जाता है कि गन्ना भारत, मलाया और थाईलैण्ड में पहले-पहले बोया जाने लगा। यह भी माना जाता है कि एशिया में गन्ना अरबों द्वारा आया।

परंतु यह मानना पड़ेगा कि भारत में गन्ने की खेती आर्य लोगों के यहां आने के समय से ही हो रही है। इसका विवरण वेदों में भी है। मौर्य काल समय तो इसके नीचे काफ़ी रकबा था और कई किस्में विकसित हो चुकी थीं। उस समय गन्ने के रस से चीनी भी बनती थी। गन्ने की खेती इसकी पोरियों द्वारा की जाती है। पके हुए गन्ने लेकर उनकी दो या तीन आँखें रखकर टुकड़े कर लिए जाते हैं। हल्के सियाड़ों में इन को बो दिया जाता है। एक समय की बोआई कई कटाई दे जाती है। फसल काटने उपरांत पोरियां पुनः उग पड़ती हैं। इस प्रकार की फसल को मोढ़ी फसल कहा जाता है। इसके रस को काढ़ कर गुड़ या शक्कर और खण्ड (चीनी) बनाई जाती है। भारत में इसकी खेती कोई 32 लाख हैक्टेयर रकबे में होती है और इसकी पैदावार कोई दो करोड़ टन है। गन्ना चाहे सभी राज्यों में बोया जाता है परंतु ज्यादातर तामिलनाडु, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, आंध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, हरियाणा और पंजाब में इसकी खेती होती है। गन्ने संबंधी खोज करने हेतु 1912 में एक शोध केंद्र कोयम्बटूर में खोला गया था परंतु 1969 से इसकी जिम्मेवारी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद को दे दी गई। इस संस्था ने गन्ने की नई किस्में बनाने में बहुत विशेष भूमिका अदा की है। कोयम्बटूर के इस मुख्य केंद्र के अतिरिक्त करनाल, शाहजहांपुर, जालंधर, पूसा और लखनऊ इसके उप-केंद्र हैं। इनकेंद्रों की सहायता से गन्ने की सभी इलाकों में अधिक उपज और ज्यादा चीनी देने वाली बढ़िया किस्में विकसित की गई हैं। गन्ने संबंधी खोज को व्यापक बनाने हेतु संपूर्ण भारतीय सहयोगी खोज प्रोजेक्ट भी शुरु किया गया है। इन यत्नों से गन्ने के उत्पादन में काफ़ी वृद्धि हुई। इस समय भारत संसार में सबसे अधिक गन्ना पैदा करता है और इसका कुल उपज में 22% हिस्सा है। देश में बहुत सी खाण्ड मिलें भी लगीं और खाण्ड निर्यात होने लगीं। इस प्रकार राष्ट्रीय अर्थचारे के सुधार में गन्ने का काफ़ी योगदान है। देश में आजादी के समय सिर्फ 5 करोड़ टन गुड़ होता था। जो कि अब बढ़ कर 20 करोड़ टन हो गया है।

कपास

संसार को कपास की खेती और कपास से कपड़ा बनाने की विधि भारत ने दी। सबसे पहले कपास की खेती सिन्धु घाटी में शुरू हुई मानी जाती है। कपड़े का सबसे पुराना विवरण मोहनजोदड़ो की खुदाई समय मिला था। जंगली कपास के पौधे अब भी काठियावाड़ और गुजरात में मिलते हैं। हड़प्पा के लोग सूती कपड़ा बनाने में निपुण माने जाते थे और भारत से कपड़ा विदेशों को जाता था। देशी कपास मुख्य केंद्र अब भी भारत है। विश्व में पैदावार में भारत का चतुर्थ स्थान है। कपास की खेती पहाड़ों को छोड़ कर लगभग सारे देश में ही होती है। आज़ादी के समय देश में लगभग 21 लाख गाठें ही कपास पैदा होती थी जो कि बढ़कर अब (1994-95) 121 लाख गाठें हो गई हैं। उपज में यह क्रांतिकारी वृद्धि बढ़िया किस्मों और खेती के अच्छे ढंगों की खोज करके ही संभव हो सकी है। देश में कपास पर आधारित हज़ारों कारखाने हैं जो लाखों लोगों को रोज़गार देते हैं। महाराष्ट्र में सबसे अधिक रकबे में कपास बोई जाती है परंतु पैदावार में पंजाब सबसे आगे है। गुजरात में सबसे अधिक मात्रा में कपास पैदा होती है। इसी कारण सबसे अधिक कारखाने भी गुजरात में ही है। अमेरिकन कपास की भारत में इस सदी के शुरू में कामयाबी से खेती की गई। मद्रास और पंजाब में इसके अच्छे परिणाम प्राप्त हुए। पंजाब में एल. एस. एस. किस्म सबसे अधिक सफल हुई और आधी सदी तक इसकी खेती होती रही। अमेरिकन कपास में पहली अधिक पैदावार देने वाली दोगली किस्म हाई ब्रिड-4 (1965) गुजरात में तैयार की गई। अमेरिकन कपास खुश्क इलाकों में सफलता पूर्वक पैदा की जा सकती है। इस पर बहुत से कीड़ों का हमला होता है। वैज्ञानिकों ने सिर्फ ज्यादा और अच्छी पैदावार देने वाली किस्में ही तैयार नहीं की बल्कि कपास को कीड़ों से बचाने के भी ढंग निकाले हैं। किसानों ने इन ढंगों को अपनाकर फसल की पूरी उपज लेने में सफलता प्राप्त की है। कपास संबंधी अखिल भारतीय सर्वांगीण अनुसंधान

प्रोजेक्ट 1967 में आरंभ किया गया । कपास की बोआई अप्रैल-मई में की जाती है । कपास के फूलों को पकने पर यह कपास के फूट बन जाते हैं जिनको पौधों के ऊपर से चुन लिया जाता है । मशीनों द्वारा कपास को वेलकर रूई और बिनौले,(बीज) जुदा कर दिया जाते हैं । रूई से धागा और धागे से कपड़ा बनता है । कपास की चुनाई तीन-चार समय करनी पड़ती है जिसके लिए दो महीने तक का समय लग जाता है । भारत से कपास और धागा विदेशों को निर्यात किया जाता है । यह देश की एक बहुत महत्वपूर्ण रोकड़ी फसल है । पिछले वर्ष (1997-98) कपास की खेती 88 लाख हैक्टेयर रकबे में की गई और 111 लाख गाठों की उपज हुयी ।

सोयाबीन

चीन को सोयाबीन का घर माना जाता है । इसके भोजन-तत्वों को देखते हुए चीन में इसकी पूजा होती है । अन्य दालों की तरह सोयाबीन के भी छोटे आकार के पौधे होते हैं, जिनको फलीयां लगती हैं । इसमें 40 प्रतिशत प्रोटीन और 20 प्रतिशत तेल होता है । सोयाबीन के आटे को बहुत से पकवानों और मिठाईयों में मिलाया जाता है । इसका दूध भी बन जाता है । चाहे यह पड़ोसी देश चीन की मुख्य फसल है परंतु आजादी से पूर्व भारत में इसकी खेती बहुत कम थी । सोयाबीन चीन से अमेरिका गया और वहां से कुछ गिनी-चुनी किस्में 1963 में भारत लाई गई । इनमें से कुछ किस्मों की सफलता देखकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की ओर से इस संबंधी खोज करने की ओर ध्यान दिया गया और 1967 में अखिल भारतीय संगठित खोज प्रोजेक्ट शुरू हुआ । इस प्रोजेक्ट अधीन खोज के तीन मुख्य केंद्र दो विशेष केंद्र और 12 उप-केंद्र स्थापित किए गए । मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश में इस फसल को बहुत सफलता प्राप्त हुई । अब सोयाबीन के नीचे रकबा 600000 हैक्टेयर से भी अधिक है । इसकी पैदावार तीन लाख टन से भी बढ़ गई है ।

पटसन

पटसन का रेशा बोरियां तथा अन्य वस्तुएं बनाने के काम आता है । भारत को इसका घर माना जाता है । वास्तव में संसार की आधी उपज केवल बंगाल में ही होती है । पटसन की महत्ता को देखते हुए अंग्रेज सरकार की ओर से इस संबंधी खोज के लिए ढाका में एक केंद्र स्थापित किया गया । आजादी के समय बंगाल को दो भागों में बांटा गया । पटसन पैदा करने वाला ज्यादा इलाका बंगला देश में चला गया । भारत में भी पटसन के विकास हेतु यत्न किए गए । इन यत्नों से पटसन नीचे रकबे में कोई चौगुनी वृद्धि हुई । अब भारत में सारे देशों से अधिक पटसन होती है । संसार की कुल उपज का 32 प्रतिशत भारत में होता है । भारत में पटसन की खेती पूर्वी भारत अथवा बंगाल, असम और बिहार में होती है जहां इसकी बोआई मार्च-मई में होती है और कटाई जुलाई-सितंबर में कर ली जाती है ।

आलू

आलू चाहे सब्जी के तौर पर प्रयोग किया जाता है परंतु यह एक प्रसिद्ध रोकड़ी फसल है । इसकी खेती भारी भूमि में की जाती है । यह अधिक उपज देने वाली फसल है । आजादी के बाद वैज्ञानिक खोज से आलू की पैदावार में क्रांतिकारी बढ़ोत्तरी हुई । आलू की महत्ता को ध्यान में रखते हुए 1949 में केंद्रीय आलू अनुसंधान परिषद पटना में स्थापित की गई । शिमला, कुफरी और बोवाली खोज केंद्र इसके उप-केंद्र बना दिए गए । आलू पर खोज संबंधी जांच हेतु डॉ. बी. एन. उप्पल के नेतृत्व में 1957 में एक कमेटी बनाई गई । इस कमेटी की सिफारिशों पर कई नए खोज केंद्र खोले गए । खोज प्रोग्राम को ज्यादा सुदृढ़ बनाने के लिए एक अखिल भारतीय सर्वांगीण खोज प्रोजेक्ट आरंभ कर दिया गया । आलू संबंधी हुई खोज से ज्यादा उपज देने वाली नई किस्में निकाली गई और उन को बीमारियों से बचाव के ढंग खोजे । इन खोजों के कारण आलू उत्पादन में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई । आलुओं की बढ़िया किस्मों नीचे

रकबा बढ़ा 1967 पश्चात् इसकी उपज में तीव्र गति से बढ़ोत्तरी हुई। दस साल में पैदावार (80 लाख टन) दुगुनी हो गई। आलू की खेती सर्दियों की खेती है और सर्दी में ही इसकी खेती की जा सकती है। फसल तैयार होने में लगभग 100 दिन लगते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में एक से अधिक फ़सल पैदा की जा सकती हैं। आलू चाहे भारत की आज मुख्य फसल बन गया है पर भारत में इसका आगमन सत्रहवीं सदी में पुर्तगालियों द्वारा हुआ। पीरू और चिल्ली को आलू का घर माना जाता है। आलू पौधे की जड़ों में लगते हैं और हरे पत्तों वाले पौधे कोई एक फुट ऊंचे होते हैं। आलुओं पर आधारित कई कारखाने भी लग गए हैं। यदि विदेशी मण्डी की ज़रूरत मुताबिक किस्में विकसित की जाएं तो इसको विदेशों में भी भेजा जा सकता है। आलू की ज्यादा सफल किस्मों के नाम शिमला के पास खोज केंद्र कुफरी आदि के नाम पर ही रखे गए हैं। कुफरी चंद्रमुखी, कुफरी अलंकार, कुफरी ज्योति, कुफरी संधूरी, कुफरी चमत्कार, कुफरी सफैद कुछ मुख्य किस्में हैं। पिछले वर्ष आलू की खेती 11 लाख हैक्टेयर रकबे में हुई और 192 लाख टन आलू की पैदावार हुई।

चारे की फसलें

पशु मनुष्य के खेती आरंभ होने के समय से ही साथी हैं इसलिए उनकी खुराक का प्रबंध करना भी आदमी की ही ज़िम्मेवारी है। अपने पशुओं के लिए बढ़िया चारा देने हेतु मनुष्य कई फसलें बोता है। ज्वार, बाजरा, बरसीम, जवी आदि चारे की मुख्य फसलें हैं। विशेषकर दुधारू पशुओं के लिए हरा चारा प्राथमिक ज़रूरत है। अधिक दूध देने वाले पशुओं का तो इसके बिना गुजारा हो ही नहीं सकता। इसी कारण यत्न किया गया है कि चारे की ऐसी फसलें खोज निकाली जाएं और उनकी किस्में विकसित की जाएं ताकि सारा साल हरा चारा मिल सके। चारे संबंधी खोज की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया है। झाँसी में एक राष्ट्रीय अनुसंधान संस्था भी बनाई गई है। राज्यों के कृषि विश्वविद्यालयों ने

भी अपने इलाके की ज़रूरतों मुताबिक अधिक उपज और भोजन तत्वों से युक्त नई किस्मों की खोज की है। डेयरी के धंधे की सफलता ज्यादा करके चारे ऊपर ही निर्भर करती है। सारा वर्ष हारा चारा प्राप्त करने हेतु कुछ फसलें और उनके बोने का समय इस प्रकार है—

फसल	बोने का समय	चारा मिलने का समय
मक्की	फरवरी-मार्च	अप्रैल-अक्टूबर
खॉह	फरवरी-जुलाई	अप्रैल-सितंबर
बाजरा	मार्च-जुलाई	मई-सितंबर
ज्वार (चरी)	मार्च-जुलाई	मई-अक्टूबर
शलगम	सितंबर-अक्टूबर	नवंबर-जनवरी
जवीं	सितंबर-नवंबर	नवंबर-जनवरी
बरसीम	सितंबर-अक्टूबर	अक्टूबर-अप्रैल

मक्की, ज्वार, बाजरा, खाँह, गुआरा, बरसीम, जवीं, मेथे आदि बीज द्वारा बोए जाते हैं परंतु चारे के लिए कई बढ़िया घास भी ढूंढ़ ली गई हैं, जिनको जड़ों द्वारा बोया जाता है। यह नेपियर घास काफ़ी ऊँचे हो जाती हैं और भोजन तत्वों से युक्त होती हैं। बरसीम और गिन्नी घास कई कटाईयां दे देती हैं। चारे के लिए एक से अधिक फसल को मिलाकर भी बोया जाता है। आमतौर पर बरसीम में जवीं, ज्वार में खाँह, मक्की में गुआरा आदि मिलाकर बीजने से बढ़िया और अधिक चारा प्राप्त होता है।

चारे नीचे खेती अधीन लाई भूमि मुश्किल से 4 प्रतिशत है। पंजाब में सबसे अधिक रकबे (13%) में चारों की खेती होती है। पंजाब में दुधारू पशुओं का अधिक दूध देने का एक यह भी कारण है कि यहां अन्य प्रांतों की अपेक्षा अधिक हरा चारा मिलता है। पूरे देश में ही हरे चारे का अभाव है। पशुओं की संख्या को ध्यान में रखते हुए वर्तमान उपज में न्यूनतम चौगुनी वृद्धि होनी चाहिए। अधिक दूध देने वाली दोगली गायों की तो यह पहली ज़रूरत है। चारे संबंधी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और राज्यों के कृषि विश्वविद्यालयों की ओर से यत्न

किए जा रहे हैं। उनकी ओर से अधिक उपज और ज्यादा पौष्टिक तत्वों वाली किस्में विकसित भी की गई हैं। चारे की कुछ प्रमुख फसलें ये हैं:–

बरसीम

बरसीम आषाढ़ी का मुख्य चारा है। इसको चारों का सरदार भी माना जाता है। ईरान को बरसीम का घर समझा जाता है परंतु भारत में यह इस सदी में ही आया, जबकि सिन्ध के इलाके में मिस्त्र से बीज लाकर इसकी खेती की गई। उसके पश्चात् यह पंजाब में आया और फिर अन्य राज्यों में फैला। बरसीम कई कटाईयां दे जाता है, इसलिए सारा सर्दी का मौसम हरा चारा मिलता रहता है। अंतिम कटाई से बीज भी तैयार किया जा सकता है। इसमें भोजन के तत्व भी होते हैं। यह हर प्रकार की भूमि में हो जाता है। इसकी बीजाई अक्टूबर में हो जाती है और अप्रैल तक हरा चारा मिलता रहता है। इसके रसभरे हरे पत्ते भोजन तत्वों से युक्त होते हैं और पशु बड़े खुश होकर इसको खाते हैं।

लूसन

यह एक अच्छा हरा चारा है। इसकी उचित निगरानी की जाए तो 6 से 7 तक कटाईयां दे जाता है। इसमें प्रोटीन, कैल्शियम और विटामिन अधिक मात्रा में होते हैं। इसके साथ ही लूसन भूमि की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि करने में मदद करता है, क्योंकि इसमें वायु मण्डल से सूर्य की किरणों की सहायता से नाईट्रोजन लेकर भूमि में भेजन का गुण है। लूसन को अमेरिका का मुख्य चारा माना गया है। सभी पशु इसको खुश होकर खाते हैं परंतु घोड़ों के लिए इसकी विशेष महत्ता है। इसी कारण इसकी खेती मिलिटरी फार्मों पर अधिक की जाती है। वर्षा के दिनों को छोड़कर यह पूरा वर्ष हरा चारा दे देता है। पश्चिमी देशों में दुधारू पशुओं का यह विशेष चारा है। इसको सुखाकर भी रखा जाता है ताकि कमी के दिनों में इसका प्रयोग किया जा सके।

नेपीयर बाजरा हाईब्रिड

नेपीयर घास जिसको हाथी घास भी कहा जाता है, भारत में इसकी दक्षिण अफ्रीका से 1912 में लाकर खेती की गई। इसकी ऊँचाई 3-4 मीटर हो जाती है। इस घास के पत्ते मोटे हो जाते हैं। तना भी बड़ा होकर सख्त और रेशेदार हो जाता है। इसके बीच एगज़ालिक तेजाब भी होता है जो कि पशुओं की सेहत पर बुरा प्रभाव डालता है। इन कारणों से यह घास हरे चारे के तौर पर अधिक प्रचलित नहीं हो सका। वैज्ञानिकों ने इस घास में भोजन तत्वों व गुणों की वृद्धि करने के लिए इसको बाजरे से मिलाकर एक दोगली किस्म तैयार की है, जिसको नेपीयर बाजरा हाईब्रिड कहा जाता है। इन किस्मों में एन. बी. 21 अधिक प्रिय हुई है, क्योंकि इसमें अच्छे भोजन गुण हैं। इस चारे की सारे साल में 4-6 कटाईयां ली जा सकती हैं। इस फसल को कीड़े और बीमारी भी कम लगती है। एक समय की लगाई फसल दो तीन वर्ष मोढ़ी रखी जा सकती है। इसकी बोआई मौसम गर्म होते ही मार्च में कर देनी चाहिए। फसल पहली कटाई के लिए दो महीनों में तैयार हो जाती है। पूरी सर्दी में इसका विकास रूक जाता है। फसल की लगवाई जड़ों से होती है।

जवीं

यह आमतौर पर ठंडे इलाके की फसल है। भारत में इसकी खेती सर्दियों में की जाती है। जवीं आमतौर पर मिलिटरी फार्मों या शहरों के पास बोई जाती है। जहां कि दुधारू पशुओं के मालिक इसको खरीद लेते हैं। उत्तरी भारत में इसको उत्तम चारा गिना जाता है। यह खुराकी तत्वों युक्त जल्दी पचने योग्य और साधारण पशुओं की पसंद का चारा है। इसका प्रयोग अधिकतर दुधारू पशुओं और घोड़ों के लिए किया जाता है। इसकी निरोल खेती भी होती है और बरसीम में मिलाकर भी बोया जाता है। क्योंकि इसके दाने भी बढ़िया पशु भोजन है; इसलिए कई जगह इसको दानों के लिए भी बोया जाता है। इसके एक एकड़ में 200 क्विंटल चारा प्राप्त हो जाता है।

गिन्नी घास

यह भी कई कटाईयां देने वाला चारा है । कुछ देशों में इसकी बोआई चारागाहों में की जाती है । इसकी जड़ें काफ़ी गहरी चली जाती हैं जिस कारण यह सूखे को भी झेल लेता है । यह आम तौर पर गर्मतर क्षेत्रों में अधिक होता है परंतु अन्य इलाकों में भी हो जाता है । जहां कि सर्दी के मौसम में इसकी बढ़ोत्तरी रुक जाती है । यह अच्छे जल निकास वाली हल्की भूमि में बढ़िया होता है । इस फसल की बोआई भी गर्मी शुरू होते ही कर देना चाहिए । इसकी बिजाई मक्की में मिलाकर भी की जा सकती है । फसल 75 दिनों में पहली कटाई के लिए तैयार हो जाती है । (मक्की, बाजरा, ज्वार संबंधी अनाजी फसल अधीन जानकारी दी गई है ।)

इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत की आजादी के पचास वर्षों में फसलों की पैदावार में चमत्कारी वृद्धि हुई है, परंतु अभी और बहुत कुछ किया जाना शेष है । हमारे देश की जनसंख्या में बड़ी तेजी से वृद्धि हो रही है उसी तेजी के साथ हमारी उपज में वृद्धि करने से ही हम अपनी आबादी की प्राथमिक ज़रूरतों को पूरा कर सकते हैं । पैदावार में वृद्धि नई धरती कृषि अधीन लाने से या फिर उपज में बढ़ोत्तरी करने से ही हो सकती है । नई भूमि कृषि नीचे आने की अधिक संभावना नहीं है बल्कि इसमें कमी ही हो सकती है क्योंकि रिहाइशी मकानों और कारखानों नीचे दिन-प्रति-दिन नई भूमि आ रही है । जंगलों के नीचे रकबा पहले ही कम है । उसमें और वृद्धि पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ देगी । एका एक सस्ती उपज में वृद्धि करनी है । वैज्ञानिकों को ऐसी किस्में विकसित करनी होंगी, जिनकी उपज अधिक हो, पानी और अन्य भोजन तत्वों की ज़रूरत अधिक हो और कीड़े तथा बीमारियों का सामना करने की शक्ति हो । हमारे वैज्ञानिकों ने जैसे देश में से पहले भूखमरी को दूर किया है, उसी प्रकार वह भविष्य की चुनौतियों का भी जरूर मुकाबला कर लेंगे ।

4

फलों और सब्जियों की खेती

खेती की कहानी उस समय तक अधूरी ही रहेगी जबतक फलों व सब्जियों की खेती संबंधी चर्चा न की जाए। फलों और सब्जियों की काश्त भी कृषि की काश्त के साथ ही आरंभ हुई। वास्तव में अनाज से पहले फल और सब्जियां मनुष्य का भोजन बने। अनाज का प्रयोग तो मनुष्य के जंगलों से निकलकर बस्तियों में रहने से शुरू हुआ, पर फलों और सब्जियों का प्रयोग मनुष्य जंगली निवास में भी कर रहा था। यह कहना बड़ा कठिन है कि फलों और सब्जियों की खेती पहले कहां आरंभ हुई। परंतु यह माना जाता है कि इनकी खेती किसी एक जगह की बजाय संसार के कई स्थानों पर आरंभ हुई। एशिया और पश्चिमी अमेरिका को उनकी खेती का जन्मदाता माना जाता है है। जब लोगों में परस्पर व्यापार का विकास हुआ तब फलों व सब्जियों का एक जगह से दूसरी ओर आदान-प्रदान होने लगा जिससे आजतक दुनिया के लगभग जिस भाग में भी अच्छी जलवायु है वहां पर ही हर तरह के फलों व सब्जियों की खेती होती है। फलों और सब्जियों की खेती भी मानवीय उत्सुक्ता का ही परिणाम है। जिस पौधे के फल मनुष्य खाता होगा उसकी टहनी तोड़कर उसने अपने निवास-स्थान के पास गाड़ दी होगी। कई फलों के पौधों की ऐसी टहनियां उग आती हैं। यह ढंग आज तक प्रचलित है। गन्ना, केला, अंगूर, गुलाब आदि अनेक पौधे हैं जिनकी उत्पति आज भी दाब द्वारा ही की जाती है। सब्जियों की खेती भी इसी प्रकार शुरू हुई

मानी जाती है। कुछ सब्जियों के टुकड़ों को पुनः धरती में दबाने से नए पौधे उग जाते हैं। आलू, हलदी, अदरक आदि इसका उदाहरण हैं। बहुत सी सब्जियों की काश्त बीजों द्वारा की जाती है। फसलों की तरह ही फलों और सब्जियों की खेती भी मौसम मुताबिक की जाती है।

फल

फलों के पौधे अन्य वृक्षों से अधिक नाजुक होते हैं। इनकी खेती हर स्थान पर नहीं की जा सकती, बल्कि इनके लिए योग्य जलवायु की ज़रूरत पड़ती है। फलों के पौधों को जलवायु अनुसार चार भागों में बाँटा जा सकता है :

1. पहाड़ी 2. नीम पहाड़ी 3. मैदानी 4. तटवर्तीय

1. पहाड़ी

फलों की सफल खेती के लिए इलाके अनुसार उचित पौधे ही लगाने चाहिए। पहाड़ों में ठंड ज्यादा होने के कारण सिर्फ वही पौधे बीजे जा सकते हैं जो ठंड सहन कर सकते हों। पहाड़ों में खेती किए जाने वाले फलों के पौधे प्राय: पूरी सर्दी में अपने पत्ते झाड़कर सो जाते हैं। वह वसंत के आरंभ होते ही पुनः जागते हैं। इनको नए पत्ते निकलते हैं और फल लगते हैं। दुबारा सर्दी शुरू होने से पहले ही इनके फल पक जाते हैं। इनमें सेब, नाशपाती, आड़ू, अखरोट, बादाम आदि मुख्य फल हैं। नए पौधे भी वसंत ऋतु शुरू होते समय ही लगाए जाते हैं। यह पौधे उस समय लगा देने चाहिए जब अभी नए पत्ते न निकले हों। नई जगह जाकर इनका अंकुरित होना चाहिए।

2. नीम पहाड़ी

नीम पहाड़ी इलाकों में उन पौधों की काश्त की जाती है जो न तो कड़ाके की सर्दी और न ही कड़ाके की गर्मी सहन कर सकते हों। इनमें आम, लीची, संतरा, आड़ू, आलूचा आदि हैं।

3. मैदानी

मैदानों में उन पौधों की खेती होती है जो मैदानों की गर्मी और सर्दी दोनों सहन कर सकते हों । इनमें मालटा, किन्नू, अंगूर, पत्थर-नाख, आम, बेर आदि मुख्य फल हैं ।

4. तटवर्तीय

समुद्र के किनारे वे फल होते हैं जिनको गर्म और तर जलवायु की ज़रूरत पड़ती है । इनमें नारियल, केला, खजूर, काजू, अन्नानास आदि मुख्य हैं ।

नए पौधे लगाने के लिए साल में दो मौसम माने गए हैं । वसंत बहार ऋतु फरवरी-मार्च और वर्षा-ऋतु जुलाई-अगस्त । वसंत ऋतु में लगभग सभी पौधे लगाए जा सकते हैं । परंतु वर्षा ऋतु में सिर्फ सदाबहार पौधे ही लगते हैं । सदाबहार पौधे वह होते हैं जो सारा साल हरे रहते हैं अर्थात् सर्दियों में अपने पत्ते नहीं झाड़ते । प्रकृति ने ऐसा चक्र चलाया है कि मनुष्य को पूरा वर्ष ही फल मिलते रहते हैं । गर्मी शुरू होते ही बेर व अंगूर पकने आरंभ हो जाते हैं । पूरी गर्मी में आम, अंगूर, आडू, आलूचा आ जाते हैं । गर्मी कम होते ही सेब, नाशपाती तैयार हो जाते हैं । इनका मौसम खतम होते ही संतरा, मालटा, किन्नू आदि का मौसम शुरू हो जाता है । इस प्रकार मनुष्य को सारा वर्ष ही ताज़ा फल मिलते रहते हैं । बादाम, काजू, पिस्ता, नेजे आदि को सूखे मेवे कहा जाता है, क्योंकि इनको लंबे समय के लिए संभाल कर रखा जा सकता है । इस प्रकार इनका प्रयोग पूरा वर्ष होता है । अंगूर और खजूर को सुखाकर दाख और छुहारे बनाए जा सकते हैं । पक्का नारियल भी काफ़ी समय रह सकता है । भारत में काश्त होने वाले मुख्य फल इस प्रकार हैं :

नींबू जाति

नींबू जाति के फलों में मालटा, संतरा, चकोतरा, नींबू, किन्नू आदि फल हैं । यह सदाबहार पौधे हैं और पूरे वर्ष में दो बार लगाए जा सकते हैं । फरवरी-मार्च और अगस्त-सितंबर नए पौधे लगाने के लिए उचित मौसम

हैं। इनके फल अक्टूबर से लेकर मार्च तक मिलते हैं। नींबू ऐसा पौधा है जिसके फल पूरा वर्ष ही मिलते रहते हैं। पौधा लगाने से चौथे वर्ष में फल लगना शुरू हो जाता है। इन फलों में कैल्शियम तथा विटामिन 'सी' मिलते हैं जो कि सेहत के लिए बड़े जरूरी हैं। संतरे नीम पहाड़ी इलाकों से लेकर मैदानी इलाकों में हो जाते हैं। पंजाब, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु में नींबू जाति के फल अधिक हैं।

अंगूर

अंगूर की बेलें आम घरों में लगाई जाती हैं। पत्तझड़ में इन बेलों की काट-छांट करना बेहद जरूरी है। इनकी नयी बेलें बनाना बड़ा आसान



अंगूरों की परलिट किस्म

है। बेलों के टुकड़े भूमि में दबा देने से ही नयी बेलें पुँगर जाती हैं। अंगूर की नयी बेलें जनवरी-फरवरी महीने में लगाई जाती हैं। दो-तीन वर्ष की आयु में फल लगने शुरू हो जाते हैं। यह फल सारा वर्ष ही मिलते हैं। क्योंकि दक्षिणी भारत में गर्मी फरवरी में ही शुरू हो जाती है। अंगूरों में विटामिन 'बी' मिलता है। अंगूरों को सुखाकर दाखें भी बनाई जा सकती हैं और इनसे अंगूरी शराब भी बनती है। अंगूर महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश में अधिक होते हैं। यूं तो यह पंजाब, कर्नाटक, कश्मीर और मध्यप्रदेश में भी पैदा किया जाता है।

आम

आम को फलों का सम्राट कहा जाता है। यह उत्तरी और पश्चिमी भारत का मुख्य फल है। देसी आम गुठली से तैयार किया जाता है जबकि कलमी आम के पौधे प्यौंद द्वारा तैयार किए जाते हैं। देसी आम का पौधा बड़ा वृक्ष बन जाता है, जबकि कलमी आम के पौधे आकार में छोटे रहते हैं। दशहरी, लंगड़ा, मालटा, फजरी, चौंसा कुछेक मुख्य किस्में हैं। आम के नए पौधे फरवरी-मार्च और अगस्त-सितंबर में लगाए जाते हैं। वर्षा में लगाए पौधे ज्यादा अच्छे रहते हैं। इनको 4-5 वर्ष पश्चात् ही फल लगने शुरू हो जाते हैं। आम अप्रैल से अगस्त तक पकते हैं। एक पौधे से लगभग 80 से 100 किलो फल मिल जाता है। आमों में विटामिन 'ए', 'सी' तथा लोहा होता है। आम पंजाब, उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र में अधिक होता है। आम को शुद्ध भारतीय फल माना जाता है।

अमरूद

अमरूद ऐसा फल है जिसके पौधे हर जगह आसानी से लग जाते हैं। इसमें खुराक के तत्व भी काफ़ी होते हैं। विटामिन 'सी' का तो यह भंडार है। लखनऊ और इलाहाबाद सफेद उन्नत किस्में हैं। अमरूद के पौधे भी दोनों मौसम वसंत और वर्षा ऋतु में लगाए जाते हैं। इसको अक्सर साल में दो बार फल लगते हैं जनवरी-फरवरी और जुलाई-अगस्त। एक

पौधे से 60 से 80 किलो फल प्राप्त हो जाता है । यह लगभग सभी राज्यों में ही हो जाता है ।

पपीता

पपीता एक और ऐसा फल है जो घर-बगीचों के लिए बहुत उचित है । यह कुहरा और सिल नहीं सहन कर सकता । पपीते के पौधे घर में ही बीजों को बीजकर तैयार किए जा सकते हैं । इन पौधों को जून के अंत में उखाड़ कर लगा देना चाहिए । पौधा लगाने से आठ नौ महीनों में ही फल लग जाता है । यह फल लगभग पूरा वर्ष ही लगते रहते हैं । अच्छे फल की प्राप्ति के लिए सदा एक से अधिक पौधे लगाने चाहिए । पपीते में भी खुराकी तत्व काफ़ी होते हैं । प्रोटीन, विटामिन ए, ई, सी कैल्शियम और लोहा मुख्य भोजन तत्व हैं । पपीता सख्त सर्दी सहन नहीं कर सकता । इस कारण यह पहाड़ों में नहीं उगाया जा सकता ।

बेर

बेर को चाहे गरीब लोगों का मेवा कहा जाता है परंतु इनमें काफ़ी खुराकी-तत्व होते हैं । बेरी अन्य फलों के पौधों के मुकाबले में कम देख भाल मांगती हैं । देसी बेरी से प्योंद बेरी की बेरियां लगानी चाहिए । उमरान और सनौर दो मुख्य किस्में हैं । बेरों के पौधे भी दोनों मौसमों में लगाए जा सकते हैं । तीन से चार वर्ष की आयु के पौधे फल देना शुरू कर देते हैं । बेर गर्मी के आरंभ होते ही पक जाते हैं । इन दिनों में अन्य फलों की कमी के कारण बेरों का महत्व बढ़ जाता है । एक बेरी से 80 से 200 किलो तक बेर मिल जाते हैं । बेरों में कैलोरीज, विटामिन 'ए' और 'सी' होता है ।

आडू

आडू भी पत्तझड़ी पौधा है, इस कारण नए पौधे जनवरी में लगाने चाहिए ताकि नए पत्ते निकलने से पहले पौधे जड़ें पकड़ लें । आडू को तीन वर्ष

की उम्र में ही फल लगने शुरू हो जाते हैं । आड़ू अप्रैल से जून तक पक जाते हैं । एक पौधे से 100 किलो तक फल मिल जाता है । आड़ू में से प्रोटीन और लोहा शरीर को प्राप्त होता है ।

अलूचा

अलूचा खाने के लिए भी और जैम बनाने हेतु भी बढ़िया फल है । यह पौधे भी पतझड़ी हैं इस कारण इनको जनवरी में ही लगाया जाता है । तीन चार वर्ष की आयु में पौधों को फल लगना शुरू हो जाता है । अलूचे के फल मई-जून में पकते हैं । एक पौधे से 50 किलो तक फल मिल जाता है । अलूचे में विटामिन ए, बी और लोहा होता है ।

नाशपाती

नाशपाती भी पतझड़ी पौधा है, इसलिए नए पौधे फरवरी के शुरू में लगाए जाते हैं । पांच से छः वर्ष की आयु के पौधे फल देने लग जाते हैं । इसके फल जुलाई-अगस्त में पकते हैं । एक पौधे से 150 किलो तक भी फल मिल जाता है । आड़ू, अलूचा और नाशपाती प्रायः नीम पहाड़ी इलाकों में अधिक सफलता से उगाए जा सकते हैं ।

लीची

लीची का पौधा आरंभिक वर्षों में ज्यादा ठंड या गर्मी सहन नहीं कर सकता । प्रारंभिक वर्षों में पौधों की विशेष देखभाल करनी पड़ती है । नए पौधे अक्टूबर में लगाए जाते हैं, जब गर्मी कम हो जाती है । यह आमतौर पर ऊँचे नीम पर्वतीय इलाकों के लिए योग्य पौधा है । चार पांच वर्ष की आयु के पौधे के फल लग जाते हैं । फल अक्सर जून में पकते हैं । एक पौधे से 80 किलो तक फल प्राप्त हो जाता है ।

औला (आंवला)

आंवला बड़ा गुणकारी फल है । इसमें विटामिन 'सी' अधिक मात्रा में होता है । आंवला सीधा बड़ा कम खाया जाता है । इसका आचार और

मुरब्बा बनाया जाता है । छोटे आकार के फल आचार के लिए और बड़े आकार के फल मुरब्बे के लिए प्रयोग किए जाते हैं । बनारसी आंवला किस्म ज्यादा अच्छी गिनी जाती है । आंवले के पौधे दोनों मौसमों में लगाए जा सकते हैं । तीन चार वर्ष की उम्र के पौधे को फल लगने शुरू हो जाते हैं । इसका फल जनवरी-फरवरी में पकता है । एक पौधा 20 किलो से भी अधिक एक फसल में फल देता है । यह फल नीम इलाके में भी जहां पानी की कमी हो वहां सफलता से उगाया जा सकता है ।

फालसा

फालसे का पौधा झाड़ी की तरह होता है । यह घर-बगीचे के लिए अधिक अच्छा है । फालसे के पौधे बीज द्वारा या कटी हुई टहनियों द्वारा ही तैयार किए जा सकते हैं । इनकी पच्छियां जनवरी में लगा देनी चाहिए । ताकि नए पत्ते फूट आने पर पौधे उग आएं । यह भी पतझड़ी पौधा है जिसके पत्ते सर्दी में झड़ जाते हैं । इस पौधे का फल दो-तीन वर्ष की उम्र में लगने लग जाता है । सर्दियों में इन झाड़ियों की काट-छांट की ज़रूरत पड़ती है । फालसे में विटामिन 'ए' और कैल्शियम होते हैं ।

अनार

अनार एक मुख्य फल है । पुराने समय से अनार और अंगूर राजाओं के बगीचों में उगते आ रहे हैं । पके अनार के दानों को सुखाकर भी रखा जा सकता है । अनार के पौधे के फूल बड़े सुंदर लगते हैं । अनार के नए पौधे बी दाब लगाकर तैयार किए जा सकते हैं । यह दाबें जनवरी महीने में लगानी चाहिए । तीन से चार वर्ष की आयु के पौधे को फल लग जाते हैं । एक पौधे को 100 अनार प्रत्येक वर्ष लग जाते हैं । अनार में प्रोटीन होता है । अनार महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश का बढ़िया फल माना जाता है ।

नारियल

नारियल का फल बहु-उपयोगी है । यह निरा खाने के लिए ही नहीं बल्कि

तेल निकालने के काम भी आता है । इसके रेशे से बहुत सी वस्तुएं बनती हैं । यह तटवर्ती क्षेत्रों में ही अधिक होता है । इसकी खेती के लिए गर्म और सिब्ल वाले जलवायु की ज़रूरत पड़ती है । इसके फल सारा साल ही मिलते हैं । कच्चे फल को तोड़कर उसका रस पिया जाता है, जबकि पके फल की गिरी प्रयोग में लाई जाती है ।

रसभरी

यह छोटे आकार के रस के साथ भरे फल होते हैं । रसभरी के पौधे छोटे से बेलों के रूप में होते हैं । यह समुद्री तट से 400 मीटर ऊँचाई पर ही सफलता से उगाए जाते हैं । यह फल बहुत नाजुक होने के कारण गर्मी में खराब हो जाते हैं । फल प्राय: अप्रैल मई में पकता है । रसभरी के लिए उपजाऊ और पानी निकास वाली भूमि की ज़रूरत पड़ती है । इनके पौधे भी नाजुक होते हैं जिस कारण विशेष देखभाल की ज़रूरत है ।

लुकाट

लुकाट भी पहाड़ी इलाके का फल है । मध्य चीन और जापान को इस का घर माना जाता है । इसके फल भी ढीले से गुच्छों के रूप में लगते हैं । लुकाट छोटे आकार, पीले रंग और लंबूतरे से होते हैं । फल के ऊपर का पतला छिलका उतारने से अंदर से रसभरा फल निकलता है इसमें एक या दो या इस से अधिक बीज होते हैं ।

खुरमानी

यह पहाड़ों का फल है, जिसको सुखाकर भी रखा जा सकता है । यह छोटे और गोल आकार का फल है जिसका बीज बदाम जैसा होता है । यह आमतौर पर कश्मीर और हिमाचल प्रदेश में ही अधिक होते हैं । इसके फल मई से अगस्त तक तैयार हो जाते हैं ।

सेब

सेब पहाड़ों का फल है, जिसके पौधे सर्दियों में पत्ते झाड़कर सो जाते हैं ।

इसको फलों का राजा भी कहा जाता है । इसके पौधे अंग्रेजों ने हिमाचल प्रदेश में लगाए थे । अब कश्मीर और हिमाचल प्रदेश इस फल के मुख्य घर हैं । इसके पौधों को फरवरी-मार्च में फूल निकलते हैं । उस समय खुश्क मौसम की ज़रूरत पड़ती है । फल अक्टूबर में तैयार हो जाता है । सेब को कई दिनों तक रखा जा सकता है । कुछ सेब नील गिरी की पहाड़ियों में भी उगाए जाते हैं । सेब खुश्की तत्वों से युक्त होता है । यह आम कहा जाता है कि यदि रोजाना एक सेब खाया जाए तो डॉक्टर की ज़रूरत नहीं पड़ती । सेब से रस, मुरब्बा और जैम भी बनाया जाता है ।

चीकू

इस फल का पौधा वृक्ष जैसा बड़े आकार का होता है । वेस्टइण्डीज को इसका घर माना जाता है । इसके फल कोई डेढ़ इंच भूरे रंग के गोलाकार में होते हैं । इसमें एक या दो बीज होते हैं और खाने में बहुत मीठा होता है । इसको पूरा पकने से ही खाया जा सकता है । पकने के लिए फल को तोड़ कर कुछ दिन रखना पड़ता है । फल सारा साल ही काफ़ी मात्रा में मिलता और लगता है ।

अन्नानास

अन्नानास के पौधे आधे से एक मीटर ही ऊँचे होते हैं । फल बड़े आकार का और बाहर से भूरे रंग का खुरदरा सा पर देखने में सुंदर लगता है । अमेरिका को इसका घर माना जाता है और यह गर्म व तर जलवायु में होता है । यह आम तौर पर असम, बंगाल और दक्षिणी तट के समीप उगाया जाता है । कई खेतों में केला और अन्नानास की इकट्ठी खेती की जाती है । इस पौधे को सजावटी पौधे के तौर पर भी लगाया जाता है । पौधे लगाने के 15-18 महीनों उपरांत फल लगता है । अन्नानास में विटामिन ए, बी. सी. और अन्य खनिज पदार्थ होते हैं । फल लेकर पौधे को काट दिया जाता है । नए पौधे उग पड़ते हैं । ऐसा तीन बार से अधिक नहीं करना चाहिए ।

केला

यह ऐसा फल है जो सारा साल ही और सब जगह पर मिलता है । केला छः इंच लंबे आकार में हरे रंग का फल होता है । छिलका उतारने के उपरांत सफेद रंग का खाने वाला हिस्सा निकलता है । इसकी खेती भी लगभग हर साल की जाती है । केले के लिए गर्म और तर जलवायु की ज़रूरत है । यह ज्यादा ठंड नहीं सहन कर सकता । परंतु फिर भी कई जगह पहाड़ी इलाकों में इसकी खेती होती है । इसका सीधा तना कोई 4 से 6 फुट ऊँचा होता है । इसकी कोई टहनियां नहीं होती । पौधे के सिरे पर गुच्छों के रूप में इसके खगे लगते हैं । कच्चे केले को सब्जी के लिए भी प्रयोग किया जाता है । इसको आमतौर पर स्टोरों में पकाया जाता है । इस प्रकार यह फल दूर स्थानों पर भेजा जा सकता है । इसके पौधे जुलाई से सितंबर तक लगाए जाते हैं । फल लेने पर इस पौधे को काट दिया जाता है जो कि गन्ने की तरह फिर उग पड़ता है ।

मुख्य सब्जियां

सब्जियां मनुष्य के भोजन का अभिन्न अंग हैं । जहां यह भोजन को स्वादिष्ट बनाती हैं वहां मनुष्य के शरीर को जरूरी भोजन तत्व भी प्रदान करती हैं । आदि मानव कच्ची और ताजा सब्जियों का प्रयोग करते थे, शायद इसी कारण ही वह शारीरिक तौर पर अब से अधिक शक्तिशाली थे । फलों के मुकाबले सब्जियों की खेती आसान है । फलों के आमतौर पर प्यौंद किए पौधे लगाए जाते हैं, जबकि सब्जियों की बीजों से सीधी खेती की जा सकती है । फलों के पौधों को फल लगने में कई वर्ष लग जाते हैं जबकि सब्जियां कुछ महीनों में ही तैयार हो जाती हैं । सब्जियों को मौसम अनुसार दो भागों में बांटा जा सकता है । सर्दियों और गर्मियों की मुख्य सब्जियां इस प्रकार हैं :

सर्दियों की सब्जियां

सर्दी के दिनों में तैयार होने वाली सब्जियों को सर्दियों की सब्जियां कहा

जाता है । यह गर्मी नहीं सहन कर सकतीं । इस कारण इनकी खेती गर्मी और वर्षा कम होने पर अगस्त-सितंबर में की जाती है । यह कम समय की फसलें होने कारण इनकी एक मौसम में एक से अधिक फसलें भी प्राप्त की जा सकती हैं । सर्दियों में खेती की जाने वाली मुख्य सब्जियां इस प्रकार हैं :

मटर

मटर सब्जियों की मुख्य फसल है । इसकी बोआई अक्टूबर-नवंबर में की जाती है । पहाड़ों में इसको देर से भी बोया जा सकता है । मटर की बेलों को हरे रंग की फलियां लगती हैं जिनमें दाने होते हैं । मटरों के दानों को सब्जी के लिए प्रयोग किया जाता है परंतु इनको पकाया भी जा सकता है । जिनको दाल के भांति प्रयोग में लाया जा सकता है । बोआई के दो-तीन महीने उपरांत मटरों की फलियां सब्जी के लिए तैयार हो जाती हैं । एक एकड़ में लगभग 50 क्विटल से भी अधिक उत्पादन हो जाता है ।

हरे मटरों में कैलरीज़ और प्रोटीन होते हैं । मटरों का मुख्य केंद्र यूरोप, एशिया, और उत्तरी भारत को माना जाता है ।

प्याज

प्याज चाहे अपने आप में सब्ज़ी नहीं पर इनके बिना शायद कोई सब्जी बन ही नहीं सकती । आज सलाद के रूप में भी प्रयोग किए जाते हैं । प्याज़ के लिए पहले पनीरी तैयार करनी पड़ती है, जब पनीरी 10-15 सें.मी. हो जाए तो इसको अच्छी तरह तैयार किए खेत में लगाया जाता है । एक एकड़ भूमि में एक सौ क्विटल से लगभग उपज प्राप्त हो जाती है । प्याज़ में कैल्शियम तत्व होता है । प्याज की पनीरी अक्टूबर-नवंबर में बोई जाती है और इसको दिसंबर में निकालकर खेत में लगाया जाता है । मौसम अनुसार इसकी दो फसलें प्राप्त की जा सकती हैं । एशिया को इसका घर माना जाता है ।

लहसुन

लहसुन भी स्वयं सब्जी नहीं परंतु इसका प्रयोग भी प्रत्येक सब्जी में किया जाता है। लहसुन की बोआई का उचित समय सितंबर का अंतिम और अक्टूबर का प्रथम सप्ताह है। एक एकड़ की बिजाई के लिए 225-250 किलो नरोई तुरीओं की ज़रूरत है। लहसुन की तुरीओं द्वारा बोआई की जाती हैं। इसकी 30 क्विंटल प्रति एकड़ उपज प्राप्त होती है। लहसुन को कई महीनों तक स्टोर में रखा जा सकता है। पूरा वर्ष इसका प्रयोग होता रहता है। इसमें फासफोर्स बहुत होती है। इसका दवाईयों में भी प्रयोग किया जाता है।

गोभी

गोभी सर्दियों की मुख्य सब्ज़ी है। गोभी दो तरह की होती है, फूल गोभी और बंद गोभी (पत्ता गोभी), फूल गोभी का सफेद रंग का बड़ा फूल होता है जबकि बंद गोभी के सारे पत्ते ही होते हैं। गोभी की बोआई पनीरी द्वारा ही होती है। पहले बीज से पनीरी तैयार की जाती है। गोभी की तीन फसलें ली जा सकती हैं अगेती, मुख्य समय व पिछेती। इस प्रकार पूरा साल गोभी सब्ज़ी के लिए मिलती रहती है। गोभी की उपज एक एकड़ में 40 क्विंटल तक ली जा सकती है। फूल गोभी में प्रोटीन, विटामिन 'सी' और बंद गोभी में विटामिन 'सी', कैल्शियम और लोहा होते हैं। बंद गोभी का घर मिस्र और यूरोप को माना जाता है, जबकि फूल गोभी का घर दक्षिण यूरोप को माना जाता है।

मेथी

मेथी के हरे पत्ते सब्ज़ी बनाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। इसकी अपनी एक विशेष खूशबू होती है और खूशबू के लिए अन्य सब्जियों में कुछ मात्रा में इसे डाल दिया जाता है। इसके पत्ते सुखाकर रख लिए जाते हैं। मेथी में प्रोटीन, कार्बोहाईडरेटस कैल्शियम और विटामिन 'ए' आदि होते हैं। मेथी के बीजों का कई दवाईयों में प्रयोग किया जाता है। यह भी

सर्दी ऋतु की सब्ज़ी है । मेथी की बोआई बीज द्वारा की जाती है । यह कई कटाईयां दे जाती है । आम मेथी लगभग पूरे देश में ही बोई जाती है परंतु कस्तूरी मेथी की खेती आम तौर पर उत्तर पश्चिमी भागों में की जाती है, जहां सर्दी होती है ।

गाजर

गाजर विटामिन 'ए' और लोहे का बढ़िया साधन है । सब्ज़ी के अलावा गाजरों को कच्चा भी खाया जा सकता है और इसका रस भी निकाला जाता है । गाजर से मिठाई भी बनती है । गाजरों की बोआई बीजों द्वारा सितंबर-अक्टूबर के महीने की जाती है । इसकी अगेती और पिछेती फसल भी ली जा सकती है । गाजर जड़ वाली सब्ज़ी है, क्योंकि इसकी जड़ ही खाने के काम आती है । गाजरों की एक एकड़ में 100 क्विंटल तक उपज प्राप्त हो जाती है । इसका घर भारत को ही माना जाता है । 'गजरेला' नामक मिठाई भी इससे बनती है ।

मूली

मूली एक और जड़ वाली सब्ज़ी है । मूली लाल और सफेद रंग की होती हैं । मूली को आम तौर पर सलाद के रूप में प्रयोग किया जाता है । मूली की खेती भी बीज द्वारा सितंबर-अक्टूबर में की जा सकती है । इसकी भी अगेती और पिछेती फसल प्राप्त की जा सकती है । मूली का घर भी एशिया को माना जाता है । इसकी खेती प्रायः पूरा वर्ष की जाती है । इनमें विटामिन 'ए' और 'सी' होता है । यह कई बीमारियों को ठीक व दूर करती है ।

शलगम

यह एक और जड़ वाली सब्ज़ी है । इसकी बोआई भी गाजर और मूली के साथ ही अगस्त-सितंबर में की जाती है । दो महीनों में फसल सब्ज़ी बनाने योग्य हो जाती है । शलगम लाल, पीले और सफेद रंग के होते

हैं। यह आकार में गोल होते हैं। गोभी, गाजर और शलगमों का आचार भी बनाया जा सकता है। एक एकड़ में 100 क्विंटल तक उपज प्राप्त हो जाती है। भारत में आमतौर पर उत्तरी भाग में ही इसकी खेती होती है। तथा इसके पत्तों में विटामिन 'ए' और 'सी' होते हैं। पंजाब और पश्चिमी एशिया को इसका घर माना जाता है। पर सायबेरिया में यह जंगली तौर पर उगी मिलती है।

गर्मियों की सब्ज़ियां

खरबूजा

खरबूजे का प्रयोग फल के रूप में किया जाता है पर क्योंकि इसकी बोआई और पकने का समय सब्ज़ियों की तरह है इसलिए खरबूजे की सब्जियों अधीन ही चर्चा होती है। खरबूजा गर्मी ऋतु की फसल है। सर्दी कम होते ही फरवरी-मार्च में इसकी बोआई होती है। खरबूजे गर्मी तेज होते ही पकने लग जाते हैं और मई-जून में खरबूजे खूब होते हैं। वर्षा आरंभ होते ही फसल खतम हो जाती है। खरबूजे का घर भी भारत और ईरान को माना जाता है। यह खाने में मीठे और एक विशेष गंध वाले होते हैं। इसमें दोगली किस्में भी बनी हैं, जिनमें शक्कर की मात्रा अधिक है। खरबूजे में विटामिन 'ए' बी होता है।

तरबूज

तरबूज भी खरबूजे की तरह गर्मियों का एक और फल है। इसकी खेती खरबूजे की तरह ही होती है और यह फल भी बेलों को ही लगते हैं। तरबूज खरबूजे से आकार में ज्यादा बड़ा रसीला और मीठा होता है। एक एकड़ में इसकी उपज 100 क्विंटल प्राप्त हो जाती है। तरबूज के बीजों में से गिरी निकालकर खाने के काम आती हैं। तरबूज अफ्रीकी बेल है, जहां सोलहवीं सदी में वह यूरोप में पहुंचा और फिर भारत में आया।

घीया कद चप्पण कद और करेला

कंद जाति की यह सब्जियां गर्मियों की मुख्य फसलें हैं । इनकी बोआई फरवरी-मार्च में की जाती है । एक और फसल वर्षा ऋतु में भी ली जा सकती है । इनका घर अमेरिका को माना जाता है ।

घीया तोरी

घीया तोरी की बेलें वृक्षों और दीवारों पर चढ़ जाती हैं । इस प्रकार यह ज्यादा जगह नहीं घेरती । घर बगीचों के लिए यह एक अच्छी सब्जी है । इसमें विटामिन 'सी' होता है ।

तर और खीरा

तर और खीरा सलाद के लिए अच्छे माने जाते हैं । सर्दियों में मूली और गर्मियों तर और खीरे का सलाद के रूप में प्रयोग आम होता है । यह भी बेलों वाली सब्जी हैं इनकी बोआई फरवरी-मार्च में ही की जाती है । इनमें पानी की मात्रा अधिक होती है । इनका घर एशिया और अफ्रीका को माना जाता है ।

टमाटर

टमाटर भी ऐसी सब्जी है जिसका प्रयोग सभी सब्जियों में प्राय: किया जाता है । पक्के टमाटरों का सलाद के रूप में प्रयोग किया जाता है । टमाटर भी गर्मी ऋतु की फसल है पर सर्दी ऋतु में अगेती फसल लेने के लिए इसको अक्टूबर-नवंबर में बोया जा सकता है । टमाटरों के लिए भी पहले पनीरी तैयार करनी पड़ती है । चार से छ: सप्ताहों तक की पनीरी को निकाल कर खेत में लगाया जाता है । सर्दियों में पौधों को ठंड से बचाया जाता है ताकि बहार ऋतु में फल मिलना आरंभ हो जाए । टमाटर की दोगली किस्में भी मिलती हैं, जो काफ़ी उपज देती हैं । टमाटर भोजन तत्वों से भरपूर होते हैं । इनमें विटामिन ए, बी और सी होते हैं । यह लगभग सारा वर्ष मिलते रहते हैं । टमाटर का घर दक्षिणी अमेरिका को

माना जाता है जहां से यह यूरोप में आए और यूरोपीय लोगों द्वारा भारत में आए।

कद (कद्दू)

यह भी बेलों वाली सब्जी है और गर्मियों के मौसम में होती है। यह बड़े आकार का होता है। जब यह हरा होता है उस समय भी सब्जी के लिए प्रयोग किया जाता है। और जब पककर इसका रंग पीला हो जाता है तब भी सब्जी के लिए प्रयोग में लाया जाता है। पका हुआ फल कई दिनों तक रखा जा सकता है। इसका घर भी अमेरिका को ही माना जाता है। कच्चे फल में खंड डालकर हलवा भी बनाया जाता है।

पेठा कद

यह भी हलवे कद की तरह बड़े आकार का होता है। यह बेलों पर लगता है। इसका प्रयोग सब्जी के लिए भी और एक प्रकार की मिठाई जिसको पेठा कहते हैं – बनाने के लिये किया जाता है। यह भी गर्मियों की ही सब्जी है। पेठे की मिठाई के लिए उत्तरप्रदेश का शहर आगरा विशेष तौर पर प्रसिद्ध है। इसकी ज्यादातर खेती उत्तरी भारत में होती है। पेठे में विटामिन ए, बी और सी होते हैं। इसमें प्रोटीन और कार्बोहाइडरेटस भी होते हैं।

ज़िमीकन्द (हाथी पैर)

यह हाथी के पांव जैसा होता है जो कि जमीन में बनता है। यह तैयार होने में काफ़ी समय लेता है। इसको कई महीनों तक रखा जा सकता है। सब्जी बनाने से पहले छिलकर नमक लगाकर धूप में रखना चाहिए ताकि इसमें से तेजाबी मादा उड़ जाए, जो जीभ को कड़वा करता है। इसमें कई दवाईयों वाले गुण होते हैं। इस में विटामिन 'ए' और 'बी' भी होते हैं। इसको अधिकतर महाराष्ट्र और गुजरात में पैदा किया जाता है।

लोबिया

लोबिये की हरी फलियां और पके हुए दाने सब्जी के लिए प्रयोग किए जाते हैं । इस में प्रोटीन और विटामिन 'बी' अधिक मात्रा में होते हैं । यह अफ्रीका की फसल मानी जाती है जहां से यह संसार के अन्य भागों में गई । यह गर्मियों की फसल है और ठंड नहीं सह सकती । कई बार इसको अन्य फसलों में मिलाकर बोया जाता है । पशुओं के लिए चारे वाली फसलों में भी इसको बोया जाता है ।

मिर्च

मिर्च चाहे गर्म मौसम में होती हैं परंतु फिर भी यह पूरा वर्ष ही मिलती रहती हैं । आमतौर पर मिर्च का पाऊडर दालों और सब्जियों में प्रयोग किया जाता है । मिर्च पौधों पर गुच्छों में लगती हैं । पकने पर यह लाल हो जाती हैं । इनको सुखाकर पाऊडर के रूप में पीस लिया जाता है । इनमें तीखापन होता है इसलिए इनको अकेला नहीं खाया जा सकता । कई बार इनका आचार भी बना लिया जाता है । मिर्च की खेती लगभग पूरे देश में ही होती है । मिर्चों को कई दवाईयों में भी प्रयोग किया जाता है । इनमें कैलोरीज, प्रोटीन और विटामिन 'ए' होते हैं । ब्राजील को मिर्चों का घर माना जाता है । भारत में मिर्च पुर्तगालियों द्वारा सत्रहवीं सदी में आई परंतु अब सबसे अधिक मिर्च का प्रयोग भारत में ही किया जाता है ।

बैंगन

यह एक ऐसी सब्जी है जो लगभग सारा वर्ष मिलती रहती है । बैंगनों की भी पहले पनीरी तैयार की जाती है । बैंगन गोल और लंबे होते हैं । इनका तांबे जैसा या बैंगनी रंग होता है । बैंगन की साल में चार फसलें प्राप्त की जा सकती हैं । पहली फसल की पनीरी अक्टूबर, दूसरी की नवंबर, तीसरी की फरवरी और चौथी की मई में बोई जाती है । एक महीने की पनीरी को निकालकर खेत में लगाया जाता है । बैंगन की अच्छी

फसल काफ़ी उपज दे देती है । एक एकड़ में 150 क्विंटल उपज प्राप्त की जा सकती है । इसका घर भारत को माना जाता है ।

भिंडी

भिंडी गर्मियों की मुख्य सब्जी है । इसकी भी दो बार बोआई होती है । फरवरी-मार्च में और जून-जुलाई में । भिंडी की बीज द्वारा सीधी बोआई की जाती है । भिंडी का फल हरे रंग का युवती की लंबी ऊंगली जैसा होता है । भिंडी एक एकड़ में 50 क्विंटल तक उपज दे देती है । भिंडी में कैल्शियम होता है । अफ्रीका को इसका घर माना जाता है और मिस्र के लोग बारहवीं सदी से इसकी खेती कर रहे हैं ।

शिमला मिर्च

इसकी पनीरी नवंबर में बोई जाती है, जिसको खेत में फरवरी महीने में निकाल कर लगाया जाता है । फसल को बीज से सीधा भी बोया जा सकता है । इस के पौधे न तो अधिक सर्दी और न अधिक गर्मी सह सकते हैं । इसलिए इसकी खेती वसंत ऋतु में की जाती है । इसमें काफ़ी भोजन तत्व होते हैं । विटामिन बी और सी इस में काफ़ी मात्रा में मिलते हैं । शिमला मिर्च उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका से अंग्रेज भारत में लेकर आए थे ।

शक्करकंदी

शक्करकंदी शक्ति और मिठास का भंडार है। इसको भूनकर या उबालकर खाया जाता है । शक्करकंदी जड़ के रूप में ही खाई जाती है । जमीन के ऊपर इसको बेलें होती हैं. इसकी बेलों की दाब से ही नई फसल बोई जा सकती है । इसकी बोआई भी अप्रैल से जुलाई तक होती है । यदि शक्करकंदी से दाबें तैयार करनी हों तो आलू की तरह इनको फरवरी महीने खेत में लगा देना चाहिए। अप्रैल तक इसकी बेलें दाब बनाने योग्य हो जाती हैं । केंद्रीय और दक्षिणी अमेरिका को इसका घर माना जाता है । इसमें विटामिन 'ए' और कार्बोहाइडरेटस होते हैं ।

अरबी

अरबी के पत्ते और गड्ढियां दोनों खाने के काम आते हैं। दक्षिणी पूर्वी एशिया को इसका घर माना जाता है। इन दोनों में ही काफ़ी भोजन तत्व होते हैं। इसके पत्ते चौड़े होते हैं। अरबी की फसल को पानी की अधिक ज़रूरत पड़ती है। यह सिल वाली जगह भी हो जाती है। इसकी बोआई गड्ढियों द्वारा फरवरी-मार्च में की जाती है। अरबी के पत्तों में कैलोरीज और विटामिन 'ए' मिलते हैं। इसकी गड्ढियां जड़ों में होती हैं। इनके मध्य में एक गोल गड्ढी होती है जिसको कचालू कहते हैं।

हलदी

कोई भी दाल या सब्जी ऐसी नहीं जिसको बनाते समय हलदी न डाली जाती हो। हलदी जहां सब्जी का रंग सुंदर बनाती है वहां इसमें कई भोजन तत्व भी होते हैं। हलदी की गड्ढियां पौधे की जड़ों में ही लगती हैं। बूटे के पत्ते चौड़े होते हैं। हलदी छौर वाली और सिल्ली रहने वाली जगह भी हो जाती है। इसकी बोआई गड्ढियों द्वारा की जाती है। गड्ढियां बहुत सख्त होती हैं इसलिए बोने से पहले इनको एक दिन पानी में भिगोकर रखना चाहिए। इसकी बोआई भी मार्च-अप्रैल में की जाती है। गड्ढियों की पिसाई विशेष ढंग से की जाती है और सब्जियों में हलदी-पाऊडर के रूप में प्रयोग की जाती है।

पालक

पालक भी भोजन-तत्वों से भरपूर है। इसके पत्तों की सब्जी बनाई जाती है। पालक सर्दी को सहन कर सकती है इसलिए सारी सर्दी में इसकी सब्जी मिलती रहती है। इसकी बोआई बीज द्वारा जुलाई-नवंबर और फरवरी में की जा सकती है। एक महीने के पश्चात् फसल पहली कटाई के लिए तैयार हो जाती है। इस उपरांत प्रत्येक बीस दिन उपरांत नई कटाई ली जा सकती है। पालक में कैलोरीज, प्रोटीन, विटामिन 'ए', 'सी' कैल्शियम और लोहा अर्थात् मानवीय शरीर के लिए उपयोगी सभी तत्व मिलते हैं। एशिया को ही पालक का घर माना जाता है।

सलाद

सलाद भी सर्दी की ही फसल है । इसके पत्ते सलाद रूप में कच्चे ही खाए जाते हैं । इसलिए इसका नाम ही सलाद पड़ गया है । इसकी बोआई भी सितंबर से नवंबर तक की जा सकती है । ईरान और तुर्किस्तान को इसका घर माना जाता है । इसकी बोआई घर बगीचों में लगभग पूरे देश में ही होती है । इसके पत्ते बोआई के दो महीने उपरांत तोड़ने वाले हो जाते हैं । यदि बड़े पत्तों को तोड़ लिया जाए तो नए पत्ते निकल आते हैं । इस प्रकार तीन-चार बार तोड़ा जा सकता है । पत्ते तब काटे जाते हैं जब पूरी तरह तैयार हो जाएं परंतु मुलायम हों । सलाद के पत्तों में विटामिन 'ए', 'सी' और लोहा होता है ।

सब्जियों और फलों की खेती भी किसी एक जगह आरंभ होने के स्थान पर संसार में कई स्थानों पर शुरू हुई माना जाती है । वैज्ञानिक ऐसे 11 केंद्रों का नाम लेते हैं जहां इनकी खेती आरंभ हुई होगी । यह भी माना जाता है कि विभिन्न फल और सब्जियों की खेती विभिन्न केंद्रों पर शुरू हुई परंतु व्यापारियों द्वारा यह अन्य केंद्रों में भी पहुंच गए । नयी दुनिया के देशों से तो मेल कुछ सदियों पहले ही हुआ माना जाता है । दक्षिणी-पूर्वी एशिया को पुराने केंद्रों में माना जाता है । यहां केला, नारियल, इलायची, और हलदी की खेती शुरू हुई । मध्य पूर्व एशिया को अंजीर, अंगूर और बदामों का घर माना जाता है । दक्षिण भारत में आम, नींबू जाति के फल और काली मिर्च, चीन में लुकाट, लीची, नींबू, चाय, उत्तरी भारत, अफगानिस्तान और ईरान में सेब, नाशपाती और अखरोट ढूंढ़े गए । यूरोप को सेब, नाशपाती, आड़ू, गोभी आदि का घर माना जाता है । अरब देशों से तरबूज संसार में गया । नई दुनिया के देशों में मैक्सिको में मध्य अमेरिका को शक्करकंदी, मिर्च, पपीता, अमरूद, पेठा और खांह का, अर्जनटाइना और ब्राजील को अन्नानास, आलू व काजू का घर माना जाता है । मानव में पर्यटन की लालसा आरंभ से ही रही है जिससे नए बीजों व पौधों का आदान-प्रदान ही नहीं हुआ बल्कि मानव-जाति भी कायम रह सकी है ।

5

वृक्ष और मिट्टी

कृषि और भूमि का अटूट संबंध है। भूमि बगैर कृषि असंभव है। पौधों की जड़ें भूमि में ही विकास करती हैं और मिट्टी से ही पौधे की भोजन तत्वों की पूर्ति की जाती है। प्रकृति ने ऐसी रचना की है कि सभी जीव-जंतु और पौधों के लिए साधन तैयार किए हैं। धरती में जलवायु और मिट्टी की किस्म मुताबिक पौधे पैदा होते हैं। फसलों के साथ वृक्षों का भी विशेष महत्व है। वृक्ष मनुष्य के साथी हैं और उसकी बहुत सी ज़रूरतों की पूर्ति करते हैं। वातावरण को शुद्ध रखने हेतु वृक्षों का विशेष योगदान हैं। वृक्षों से लकड़ी मिलती है जो मनुष्य के अनेक काम संवारती है। बहुत से उद्योगों का आधार जंगलों से प्राप्त वस्तुएं हैं। पशुओं को जंगलों में से चारा प्राप्त होता है। जंगलों में ही अनेक जड़ी-बूटियां हैं, जो बहुत से रोगों का इलाज करने में प्रयोग की जाती हैं। बहुत से जंगली जीवों और पक्षियों का निवास जंगल हैं। वृक्ष बाढ़ को रोकने, धरती की रक्षा और पानी की संभाल करते हैं। वृक्षों की वर्षा होने में भी भूमिका है। इसलिए धरती ऊपर पैदा हुई प्राकृतिक वनस्पति की रक्षा की भी ज़रूरत है। अनाज की कमी को पूरा करने हेतु कई जगह जंगलों को काटकर फसलों की खेती शुरू की जा रही है जो कि बंद होनी चाहिए। वृक्ष जीवन का आधार है, इसीलिए जंगलों की रक्षा करना हमारा धर्म है। फसलों की तरह वृक्ष भी जलवायु और धरती की किस्म अनुसार विभिन्न इलाकों में भिन्न भिन्न होते हैं। पहाड़ों, मैदानों और रेगिस्तान में मिलने वाले

वृक्षों का परस्पर बहुत अंतर है । ऊंचे पर्वतों पर ऐसे वृक्ष होते हैं जो पानी की कमी को सह लेते हैं । कुछ वृक्षों की लकड़ी ज्यादा अच्छी होती है । जो फर्निचर और इमारतों में काम आती है । खेती की कहानी उस समय तक अधूरी है जब तक जंगलों संबंधी और मिट्टी संबंधी ज्ञान प्राप्त न किया जा सके। वृक्षों और मिट्टी को उनके स्वभाव अनुसार वर्ग-विभाजन निम्न अनुसार किया जा सकता है :

वृक्षों के वर्ग भेद

वृक्षों की किस्म अनुसार उनके वर्ग भेद इस प्रकार किए जा सकते हैं :

पतझड़ी वृक्ष

ऐसे वृक्ष मैदानों में होते हैं । गर्मी के मौसम में इन वृक्षों के पत्ते झड़ जाते हैं । परंतु वर्षा के शुरू होने पर ही नए पत्ते निकल आते हैं । इन वृक्षों के बड़े घने जंगल होते हैं । टाहली, सागवान, साहल आदि इस वर्ग के मुख्य वृक्ष हैं । ऐसे जंगल मैदानों व पहाड़ों के दामन में जहां मध्यम दर्जे की वर्षा होती है, मिलते हैं । इन वृक्षों से इमारती लकड़ी प्राप्त होती है ।

शंकुफल धारी जंगल

ऐसे जंगलों में उगने वाले वृक्षों को शंकुफलधारी इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इन वृक्षों के पत्ते सुई की तरह तीखे होते हैं और इनका सिर लट जैसा होता है । देवदार, चीड़, ओक आदि इन जंगलों के मुख्य वृक्ष हैं । इन वृक्षों की लकड़ी फर्निचर और रेलवे के स्लीपर बनाने के काम आती है । ऐसे जंगल पहाड़ों की ढलानों पर होते हैं ।

सदाबहार जंगल

जहां वर्षा अधिक होती है, वहां सदाबहार जंगल होते हैं । यह बहुत घने होते हैं । यहां तक कि इनके बीच से गुजरना भी कठिन होता है । बांस, बिल, संदल, टीक आदि वृक्ष इन जंगलों में होते हैं । यह वृक्ष आकार में बहुत बड़े होते हैं और घनी छाया वाले होते हैं ।

खुशकी वाले जंगल

ऐसे जंगल समुद्र के किनारे वाली दलदलों या दरिया के डेलटा में होते हैं। विशेष किस्म के वृक्ष ऐसे जंगलों में उगते हैं। बंगाल का सुंदरवन इसी प्रकार का जंगल है। कुछ ऐसे वृक्ष भी हैं जो रेगिस्तान में उगते हैं। इनके पत्ते बहुत छोटे होते हैं परंतु कांटे अधिक होते हैं। यह पानी की कमी को सहन कर सकते हैं।

धरती

हर जगह पर धरती एक समांन नहीं है। मिट्टी की किस्म वहां के जलवायु पर निर्भर करती है। मिट्टी की किस्म मुताबिक इसको छः भागों में बांटा जा सकता है।

रेतीली मिट्टी

ऐसी मिट्टी चटानों के गिरने से बनती है। यह आम तौर पर वहां होती है जहां आँधी अधिक आती रहती हैं और वर्षा कम होती है। पानी और खाद की सहायता से रेतीली मिट्टी में भी अच्छी फसल प्राप्त की जा सकती हैं। तेल बीज और दालें रेतीली भूमि में अधिक होते हैं।

लाल मिट्टी

जिस मिट्टी का रंग लालिमा (लाली) वाला हो उसको लाल मिट्टी कहा जाता है। यह मिट्टी प्राय: खुशक इलाकों में चट्टानों के टूटने से बनती है। ऐसी धरती ज्यादा उपजाऊ नहीं होती परंतु खादों की सहायता से अच्छी फसलें प्राप्त की जा सकती हैं। यह पठारी धरती थोड़ी सख्त भी होती है। यदि सिंचाई सुविधाएं हों तो इसमें फसलों की काश्त हो सकती है।

काली मिट्टी

काली मिट्टी ज्वालामुखी वाली चटानों से बनती है। ज्वालामुखी में से निकला लावा इस धरती का मुख्य भाग होता है। यह आभ तौर पर

चिकनी होती है जिसके कारण नमी को अधिक देर तक संभाल सकती है । इस धरती में गन्ना, कपास और धान बहुत होते हैं । यह भूमि उपजाऊ होती है । इसलिए फसलों की खेती के लिए बहुत उचित है ।

कल्लर वाली मिट्टी

कल्लर वाली मिट्टी में चाक और शेरा अधिक मात्रा में होता है । नमक जैसी मिट्टी की परतें भूमि की धरातल पर नजर आती हैं । ऐसी मिट्टी फसलों की खेती के योग्य नहीं होती । धरती में अधिक सेम होने के कारण इस प्रकार के कल्लर बन जाते हैं । अब ऐसे ढंग खोज लिए गए हैं जिसकी सहायता से ऐसी भूमि को कृषि योग्य बनाया जा सकता है ।

भल्ल वाली मिट्टी

ऐसी मिट्टी को सबसे अधिक उपजाऊ माना जाता है । यह मिट्टी दरिया अपने साथ पहाड़ों में से खोर कर लाते हैं और मैदानों में इसको छोड़ जाते हैं । ऐसी मिट्टी दरियाओं के नजदीक मिलती है । इसी कारण दरियाओं के मैदान सबसे अधिक उपजाऊ होते हैं । दरियाओं के होने के कारण सिंचाई की सभी सुविधाएं भी ऐसी जगह मिलती हैं । इस कारण इस धरती को सबसे अधिक उत्तम माना जाता है । आबादी का दरियाओं के किनारों पर बसने का एक कारण यह भी है ।

पथरीली मिट्टी

ऐसी मिट्टी पहाड़ों में या पहाड़ों की तलहटी में जहां वर्षा अधिक होती है, मिलती है । ज्यादा वर्षा होने के कारण धरती के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी पानी से आगे चली जाती है और नीचे से सख्त पथरीली मिट्टी निकल आती है । ऐसी मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं होती, सड़कें आदि बनाने के काम आती है ।

फसलों की खेती भूमि की किस्म पर निर्भर करती है । यदि मिट्टी अधिक नमकीन (खारी) या अधिक तेजाबी होगी तो उसमें फसलों की

खेती मुश्किल हो जाएगी । सयाने किसान हमेशा अपने खेतों की मिट्टी की जांच करवा लेते हैं जिससे उनको अपनी मिट्टी का स्वभाव और उसकी उपजाऊ शक्ति का ज्ञान हो जाता है । अच्छी मिट्टी वही होती है जिसमें पानी को जजब करने की क्षमता हो, उसमें हवा रह सके और भोजन के तत्वों से भरपूर हो । फसलों की अधिक खेती होने के कारण मिट्टी में प्राप्त खुराक के तत्वों की इतनी अधिक मात्रा नहीं रहती जिससे अच्छी फसल प्राप्त की जा सके । इसलिए भूमि की जांच करवा लेनी चाहिए ताकि पता चल सके कि उसमें किन भोजन तत्वों की कमी है । इस कमी को रासायनिक खादों के प्रयोग से पूरा किया जा सकता है । इस तरह मिट्टी के स्वभाव को कुछ सीमा तक तब्दील किया जा सकता है । ज्यादा खारी या तेजाबी मिट्टी को सुधार कर खेती योग्य बनाया जा सकता है ।

जनसंख्या में दिन-प्रति-दिन वृद्धि होती जा रही है । इसलिए अधिक अनाज की ज़रूरत है । भूमि में तो और अधिक पसार होना संभव नहीं है बल्कि आबादी अधीन बढ़ रहे रकबे के कारण कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है । जंगलों नीचे भूमि कम होती जा रही है जिस कारण पर्यावरण का संतुलन बिगड़ सकता है । उपज में वृद्धि सिर्फ प्रति यूनिट उपज में वृद्धि से ही हो सकती है । धरती को भी मशीन की तरह ही समझा जाने लगा है । रासायनिक खादों की सहायता से अधिक से अधिक फसलें प्राप्त की जा रही हैं, जिससे धरती की सेहत भी बिगड़ रही है ।

खेती के लिए भूमि के अलावा जल की भी आवश्यकता है जैसे जीव पानी के बिना जीवित नहीं रह सकता इसी प्रकार फसलें भी पानी बिना जिंदा नहीं रह सकतीं । पानी का मुख्य स्रोत वर्षा ही है । यदि वर्षा न हो तो पानी के खतम होने का भय बन जाता है । हमारे देश में अधिकतर खेती बारानी ही होती है । जिसका भाव है कि फसलें वर्षा पर निर्भर करती हैं । यदि वर्षा हो गई तो फसल हो जाती है नहीं तो फसल नष्ट हो जाती है । इस कारण अनावृष्टि (सूखा) वाला वर्ष कृषि के लिए बड़ा

घातक होता है । सिंचाई साधन भी वर्षा के ऊपर ही निर्भर करते हैं । कूप और नहरें सिंचाई के मुख्य साधन हैं । नहरों द्वारा दरियाओं के पानी को सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता है । इस प्रकार भूमि नीचे वाले पानी को कूपों या ट्यूबवेलों द्वारा बाहर निकालकर सिंचाई की जाती है । दरियाओं और कूपों का पानी भी वर्षा पर ही निर्भर करता है । यदि वर्षा नहीं होती तो दरियाओं में पानी कम हो जाता है और कुएं सूख जाते हैं । इसी कारण कृषि का आधार वर्षा के ऊपर ही है । वर्षा और धरती प्रकृति का उपहार हैं जिनके कारण धरती के जीव अपना पेट भरते हैं ।

6

भविष्य की खेती कैसे होगी

पिछले पचास वर्षों में कृषि का जो विकास हुआ है, वह शायद पिछले 2000 वर्षों में भी नहीं हुआ था। इस विकास का मुख्य आधार विज्ञान के ज्ञान का प्रयोग है। नई टैक्नोलॉजी के कारण खेती के काम आसानी से होने लगे और उनमें तेजी आई। वैज्ञानिकों ने ऐसे बीज विकसित किए जिनकी उपज अधिक थी और उनकी भोजन की ज़रूरत रासायनिक खादों द्वारा पूरी की जा सकती थी। फसलों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए अनेक दवाईयों का विकास हुआ। खेती पैदावार में वृद्धि की ज़रूरत आबादी में बढ़ोत्तरी के कारण और लोगों के अच्छा जीवन जीने की इच्छा के कारण पड़ी। आबादी में वृद्धि निरंतर हो रही है। अभी भी अनेक लोगों को पेट भरने के लिए भोजन नहीं मिलता। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि खेती उपज में और वृद्धि की ज़रूरत है। उपज में वृद्धि दो प्रकार से हो सकती है। खेती नीचे रकबे में वृद्धि या फिर प्रति यूनिट उपज में वृद्धि। हमारे देश में खेती अधीन रकबे में वृद्धि संभव नहीं है। पहले ही ज़रूरत से अधिक रकबा खेती अधीन है। भविष्य में ऐसे यत्नों की आवश्यकता है जिनके द्वारा प्रति यूनिट उपज में वृद्धि हो सके। घनी खेती के कारण जहां उपज में बढ़ोत्तरी होती है वहां कई मुश्किलें भी आती हैं। भूमि की उपजाऊ शक्ति में कमी, पानी की कमी, वायुमण्डल का दूषित होना और प्राकृतिक संतुलन का बिगड़ना। भविष्य में कृषि को ऐसे मार्ग दर्शन की ज़रूरत है कि उपज में वृद्धि भी

हो और ऊपर बतलाई गई मुश्किलें भी उत्पन्न न हों। भविष्य की खेती कुछ इस प्रकार की होगी।

फसलों का चयन

सिंचाई सुविधाओं से फसलों की उपज में वृद्धि हुई है। सींचने योग्य (सेंजू) धरती में से दो फसलें प्रति वर्ष पैदा की जाने लगी हैं। कई जगह तीन फसलों की भी खेती होती है। किसान फसलों का चयन आमतौरं पर आर्थिक पक्ष से ही करता है। पंजाब में गेहूँ, धान मुख्य फसल चक्र बन गया है। यह दोनों फसलें धरती में से अधिक भोजन तत्वों का प्रयोग करती हैं, जिस से धरती की उपजाऊ शक्ति का संतुलन बिगड़ गया है। इस संतुलन को बनाए रखना भविष्य की खेती की एक मुख्य ज़रूरत होगी। ऐसे फसली-चक्र विकसित करने होंगे जिनसे धरती की उपजाऊ शक्ति का संतुलन भी बना रह सके और किसानों को आर्थिक लाभ भी पूरा मिल सके। फलीदार फसलें धरती की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखने में काफ़ी मदद करती हैं। इन फसलों की ऐसी किस्में विकसित करनी पड़ेंगी जिनकी उपज अधिक होगी। अनाज की बढ़ रही मांग को सामने रखकर अनाजी फसलों की भी ऐसी किस्में विकसित होंगी जिनकी उपज अबसे काफ़ी अधिक बढ़ जाएगी परंतु उनकी खेती पर होने वाला खर्च पहले से कम हो जाएगा।

खादों का प्रयोग

ज्यादा उपज देने वाली फसलों को भोजन-तत्वों की अधिक मात्रा में ज़रूरत होती है। पारंपरिक खाद जिसको खड़ी कहा जाता है, इतनी मात्रा में नहीं मिल सकती जिससे फसलों की ज़रूरतों को पूरा किया जा सके। ज़रूरतों की पूर्ति के लिए रासायनिक खादें तैयार की गई। भविष्य में शायद रासायनिक खादें भी धरती की ज़रूरत को पूरा न कर सकें। यह भी अधिक मात्रा में चाहिए। और इनका धरती पर बुरा प्रभाव भी पड़ सकता है। खाद बनाने वाले कारखाने और खादें अपने आप भी

वातावरण को दूषित करती हैं। भविष्य में ऐसे रासायन खाद के तौर पर प्रयोग किए जाएंगे जिनकी बहुत थोड़ी मात्रा में ज़रूरत पड़ेगी और वह वातावरण को दूषित भी नहीं कर सकेंगे। मनुष्यों के लिए जैसे ताकत के टीके और विटामिन की गोलियां हैं उसी तरह फसलों के लिए ताकत के टीके और गोलियां बन जायेंगी। इनमें अद्वितीय शक्ति होंगी जिस के द्वारा फसलों की बढ़िया बढ़ोत्तरी हो सकेगी।

फसल सुरक्षा

घनी खेती के कारण फसल-सुरक्षा एक गंभीर समस्या बन गई है। फसलों ऊपर बहुत सी बीमारियां और कीड़ों का हमला होने लग गया। इनकी रोकथाम के लिए कीट-नाशक दवाईयों का छिड़काव बढ़ गया है। इन दवाईयों के प्रयोग से वातावरण भी दूषित होता है और इनके अंश भी खेती-उपज में चले जाते हैं। इन दवाईयों के प्रयोग से जहां किसान के खर्च में वृद्धि हुई है, वहां मानवीय सेहत ऊपर भी इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। भविष्य में फसलों की बहुत सी ऐसी किस्में विकसित हो जाएंगी जिनमें इन बीमारियों और कीड़ों से टकर लेने की शक्ति होगी। वैज्ञानिकों की ओर से यत्न हो रहे हैं जिनसे फसलों में ऐसे तत्व भर दिए जाएंगे जो कीड़ों का मुकाबला कर सकेंगे। यदि दवाईयों की आवश्यकता भी पड़े तो वह ऐसी होंगी कि उनका मनुष्य और पशुओं की सेहत पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। इनकी ज़रूरत भी बहुत कम मात्रा में पड़ेगी जिनका छिड़काव आसान हो जाएगा।

मशीनों का उपयोग

खेती बहुत ही मेहनत वाला धंधा है। किसान को पूरा दिन भर ही मिट्टी से मिट्टी होना पड़ता है। इसीलिए कई लोग किसान की जूनी (जीवन) को बुरी भी कहते हैं। खेती में मशीनों के उपयोग से किसान के कामों में कुछ आसानी हुई है। मशीनों द्वारा उसके काम आसान और तेजी से होने लग गए हैं। परंतु मौजूद खेती मशीनें इतनी महंगी हैं कि साधारण

किसान के लिए इनका उपयोग कठिन हो जाता है। इन मशीनों का रख-रखाव भी विशेष ध्यान खींचता है। उस पर खर्च भी अधिक आता है। खेती में मशीनों के उपयोग का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। भविष्य में ऐसी मशीनें बन जाएंगी जिनका आकार छोटा होगा, मूल्य कम होगा और उनका चलाने का ढंग सरल होगा। उन को चलाने के लिए महंगे पेट्रौल और डीजल की ज़रूरत नहीं होगी बल्कि ऊर्जा के ऐसे नए साधन (सूर्य की और ऐटमी ऊर्जा) ढूंढ़ लिए जाएंगे जो सस्ते भी होंगे और वातावरण को दूषित भी नहीं करेंगे। बल्कि उसके व्यक्तिगत जीवन को भी खुशगवार बनाने में सहायता करेंगे। घरों में स्त्रियों को सारा दिन धुएं वाले चूल्हों के आगे बैठ रोटियां नहीं पकानी पड़ेंगी। पकी-पकायी रोटी घर से सस्ती मिल सकेंगी। हर किसान के पास इधर उधर आने जाने के लिए सस्ती और छोटी गाड़ियां होंगी। नई मशीनों की काम करने की गति भी तेज होगी जिससे सभी काम तेजी से हो सकेंगे।

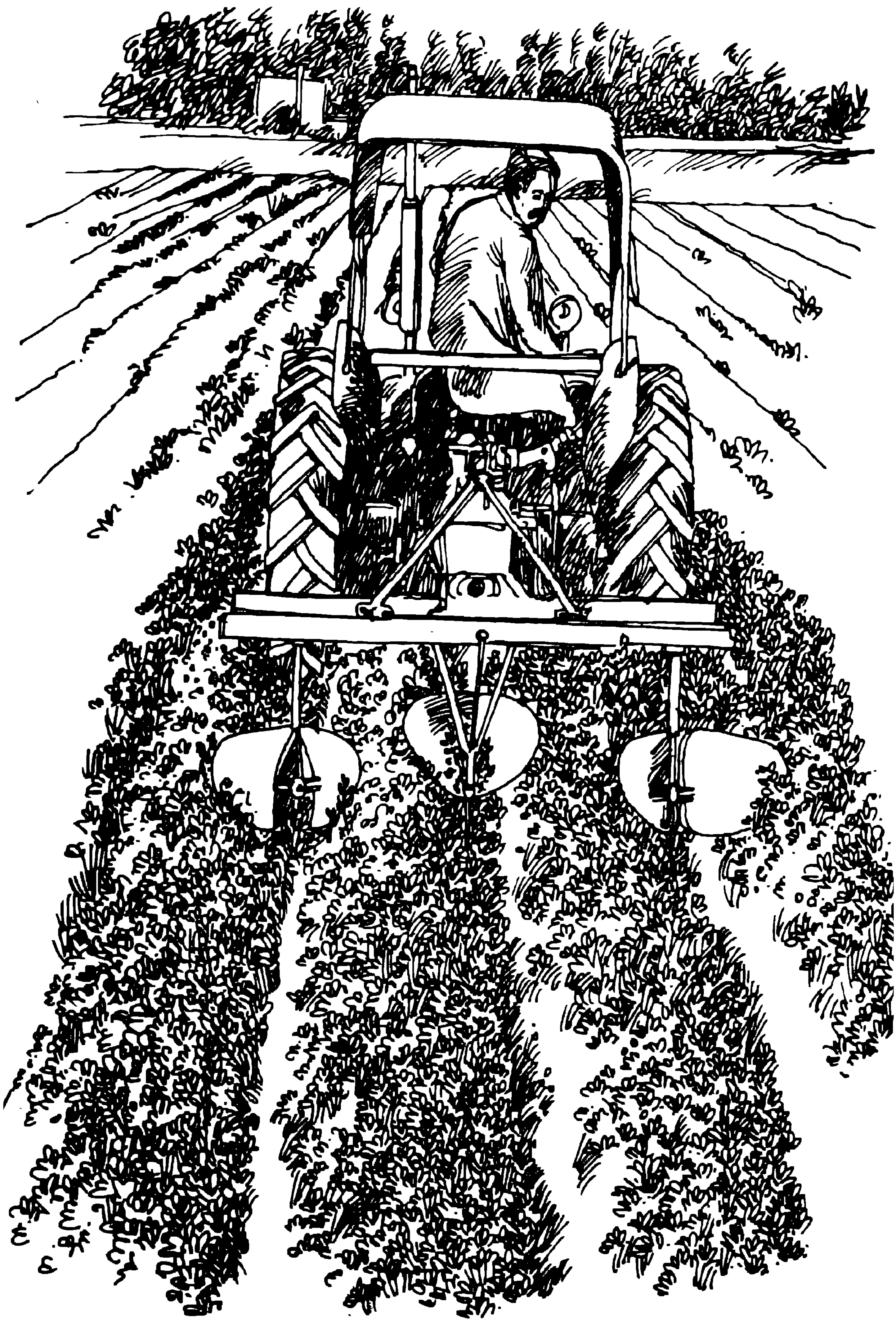
पानी का प्रयोग

पानी फसल का जीवन है। जहां सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं वहां फसल अच्छी होती है। यह देखने में आया है कि जहां सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध है वहां इसका अधिक प्रयोग होने लग गया है। यह भय पैदा होता जा रहा है कि पानी के स्रोत इतने कम न हो जाएं कि किसी दिन यह धरती बंजर हो जाए। भविष्य में ऐसा फसली-चक्र अपनाना पड़ेगा जिसमें पानी का प्रयोग कम किया जा सके। फसलों की भी ऐसी किस्में विकसित हो जाएंगी जो पकने में कम समय लेंगी और जिनकी पानी की ज़रूरतें भी बहुत कम होंगी। इस प्रकार पानी जो प्रकृति का सबसे अमूल्य भंडार है, का प्रयोग संयम से किया जा सकेगा। पहाड़ों में वृक्षों को बेरहमी से काटा जा रहा है, उनकी कटाई बंद हो जाएगी और नए वृक्ष लग जाएंगे। मैदानों में भी वृक्षों के महत्व को पुन: समझा जाएगा और जितनी भूमि में वृक्ष होने चाहिए उतनी धरती में वृक्ष लहलहाएंगे। वृक्षों का पानी की संभाल में बहुत योगदान है। वृक्ष धरती के नीचे पानी

संभालने में सहायता करेंगे। इस प्रकार बाढ़ को भी रोका व कम किया जा सकेगा और भूमि कटाव व ख़ोरे को भी रोका जा सकता है।

भविष्य में फार्म का आकार कम हो जाएगा। किसान अपने फार्म में ही साफ-सुथरा घर बनाकर रहेगा जिसको चारों तरफ से फलों और फूलों वाले पेड़ों से सजाया होगा। उसकी अपनी व्यक्तिगत बगीचे होंगे जहां उसको ताजा और स्वच्छ सब्जी मिल सकेगी। सूर्य उसकी रसोई पकाएगा और अन्य कई मशीनों को चलाएगा। उसके फार्म पर अधिक दूध देने वाली गाएं, शहद की मक्खियां, खुंबों के बक्से होंगे। गांव के लोगों की अपनी संस्था होंगी। यह संस्था किसानों की उपज की बिक्री और उसकी कृषि-ज़रूरतों की पूर्ति करेगी। यह संस्था के अपने छोटे छोटे कारखाने होंगे जिनके द्वारा किसानों के अतिरिक्त उपज की संभाल की जाएगी। किसान की उपज मंडी में बेकार नहीं पड़ी रहेगी और न ही उसके स्वाभिमान की नीलामी होगी। बल्कि उसके गांव की संस्था उपज को शुद्ध स्वच्छ ढंग से पैकटों में बंद करेगी और उचित दाम पर उपभोक्ताओं तक पहुंचाएगी। इस प्रकार किसानी, जिसको कठिन धंधा समझा जाता है और जिसमें कम आय गिनी जाती है, वह पुन: उत्तम धंधा बन जाएगा। किसान का फार्म उसकी रियासत होगी, जिसका वह राजा होगा। उसके गांव में वह सभी सुविधाएं होंगी जिनका आकर्षण उसको गांव से दूर ले जाता है। भविष्य में उसका फार्म और उसका गांव ही स्वर्ग बन जाएंगे।

इस समय भारत में 1400 लाख हैक्टेयर धरती पर खेती हो रही है। बहुत यत्न करने से 400 लाख हैक्टेयर और धरती खेती के अधीन लाई जा सकती है। परंतु इसके लिए जंगलों को काटना पड़ेगा। हमारे देश में जंगलों के अधीन रकबा पहले ही ज़रूरत से कम है। इस रकबे में और वृद्धि होनी चाहिए जिससे वातावरण का संतुलन बनाए रखा जा सके। इसलिए खेती अधीन रकबे को लाने की बजाय प्रति हैक्टेयर उपज



उपज में वृद्धि – मशीनों का योगदान

में वृद्धि करनी पड़ेगी । भारत में मुश्किल से 30 प्रतिशत रकबा सिंचाई योग्य(सेंजू) है । एक तो सिंचाई-सुविधाओं में वृद्धि जरूरी है दूसरे बरानी खेती संबंधी खोज की ओर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है । उपज में वृद्धि के लिए रासायनिक खादों और कीट-नाशक दवाईयों का प्रयोग ज़रूरी हो गया है । हमारे देश में 1957 में मुश्किल से दो हज़ार टन कीट-नाशक दवाईयों का प्रयोग होता था जो कि बढ़कर इस सदी के अन्त तक दो लाख टन हो जाएगी । इस तरह खादों के प्रयोग में भी कई गुणा वृद्धि हुई है । इनका अधिक प्रयोग सिर्फ वातावरण को ही प्रदूषित नहीं कर रहा बल्कि अनाज द्वारा इनका प्रभाव मनुष्यों पर भी पड़ रहा है । इसलिए इन रसायनों का खेती में और प्रयोग नहीं करना चाहिए । बल्कि फसलों की ऐसी किस्में निकाली जाएं जिनमें बीमारियों और कीड़ों का मुकाबला करने की शक्ति हो या ऐसे मित्र कीड़े ढूँढ़े जाएं जो हानिकारक कीड़ों को खा जाते हों । ऐसे चमत्कारी रसायन ढूँढ़ने की ज़रूरत है, जिनका कम मात्रा में प्रयोग करने से ही फसल को पूरे भोजन-तत्त्व प्राप्त हो सकें । ऐसे तत्त्व भी खोजे जा सकते हैं जो सूर्य-शक्ति का अधिक प्रयोग करके उसमें से भोजन प्राप्त कर सकें । इस समय गन्ने के नीचे हमारे देश में बहुत रकबा है । प्रयोगशाला में बनावटी चीनी बनाए जाने की बहुत संभावना है । यदि वैज्ञानिक इसमें सफल हो जाते हैं तो गन्ने के नीचे वाला रकबा अनाज पैदा करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है । पशु सुधार की भी ज़रूरत है । अब हमारे देश में दो करोड़ टन दूध पैदा होता है और दुनिया में दूध उत्पादन में हमारा पहला स्थान हो गया है । परंतु हमारी ज़रूरत छः करोड़ टन की है । भारत में पशुओं की नसल सुधार की काफ़ी संभावनाएं हैं । हमारे देश में दुधारू पशुओं की संख्या सब देशों से अधिक है जबकि दूध की पैदावार बहुत से देशों से कम है । गायों की नसल सुधार के काम को योजना के तौर पर लहर बनाकर करना ज़रूरी है ।

यदि यत्न किए जाएं तो उपज में ज़रूरत के अनुसार वृद्धि हो सकती है और हम अपने देश को आगामी वर्षों में पड़ने वाली भुखमरी से बचा सकते हैं।

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रयल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित